हम सबला

tkxksjh dh i f=dk

tuojh&tu 2012

bl vad esa
fd'kksfj;ksa vkSj
fd'kksjkoLFkk

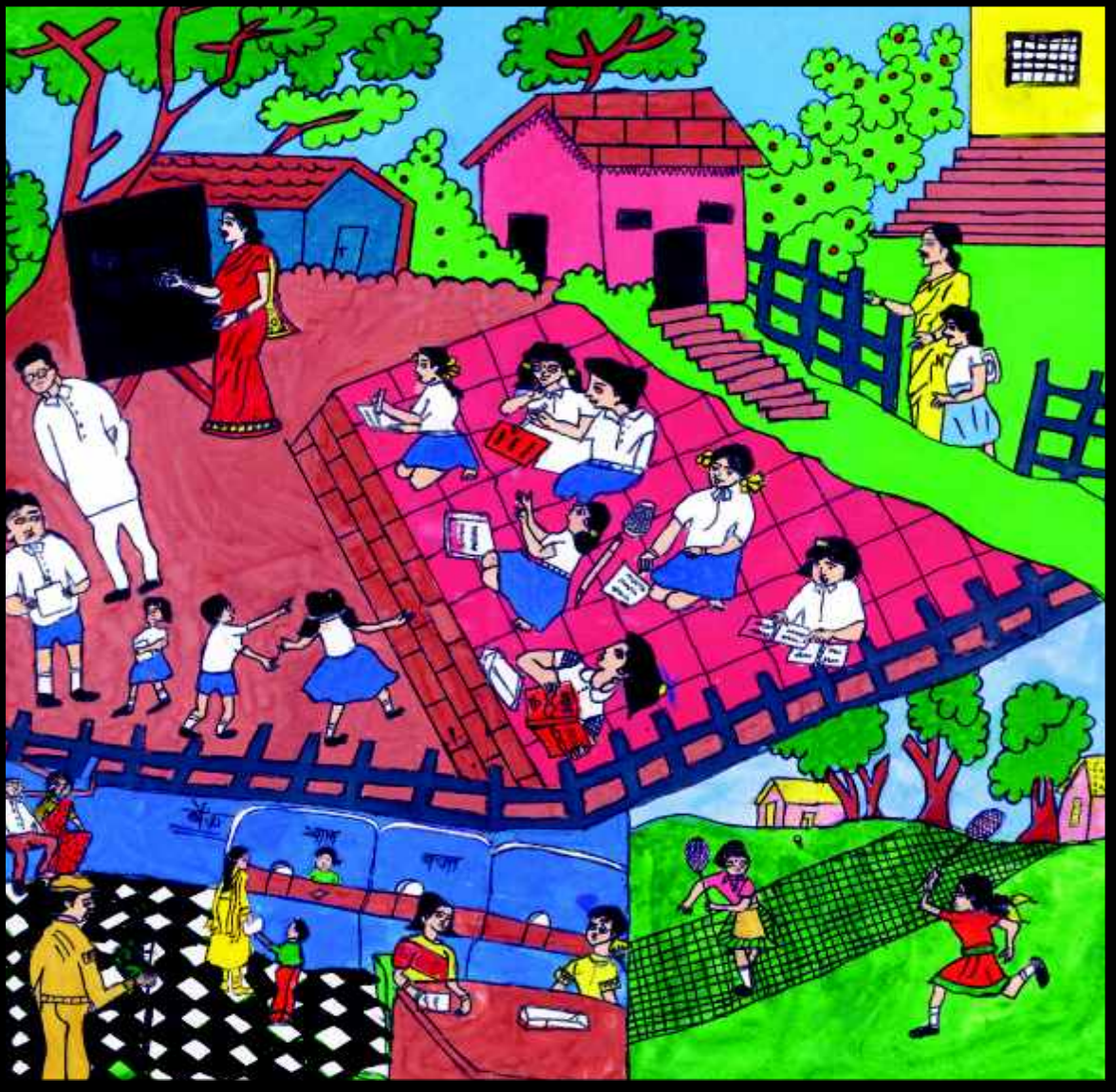

[kyus nks] i<us nks] yMfd;ksa dks vkxs c<us nks

हम सबला

जनवरी-जून 2012

इस अंक में

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
वीणा शिवपुरी
अनामिका
सीमा श्रीवास्तव
गीता नम्बीशन

मुख पृष्ठ:
वाचा रिसोर्स सेन्टर, मुम्बई द्वारा प्रकाशित पोस्टर पर आधारित
डिज़ाइन: *फरहीन, उज़मा, प्रिया*

पिछला कवर:
संगत, जागोरी एवं जागोरी ग्रामीण द्वारा प्रकाशित पोस्टर
डिज़ाइन: *अनहद*

सज्जा व मुद्रण: सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

बी-114, शिवालिक
नई दिल्ली 110017
ई-मेल: humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइट: www.jagori.org
दूरभाष: 26691219, 26691220
हेल्पलाइन: 26692700

हमारी बात — जुही — 1

लेख
युवा लड़कियों के अधिकार एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — विभूति पटेल — 2
भारत में बाल अधिकार — मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने — 5
चल चलें मेले में — वीणा शिवपुरी — 9
युवती मेला: प्रभावकारी सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम
किशोरियों की तस्करी: दर्जा व प्रभाव — रंजना कुमारी — 19
बेड़ियों को तोड़ती किशोरियां — जुही — 28

कविता
कहानियों की दुनिया में लड़की — सुमन केशरी — 8
भिन्न — अनामिका — 18
सांझी — पवन करण — 27
अपनी बेटी के नाम — अतिया दाऊद — 41

संवाद
बाघ तो बच गये, पर बेटियां? — मृणाल पाण्डे — 25
युवाओं की ज़िम्मेदारी भी है — मधु - जागोरी — 36
विनाश की ओर अग्रसर — ईता महरोत्रा — 39

कहानी
कुतिया — मृणाल पाण्डे — 24

आमने-सामने
किशोरियों के साथ वाचा — मेधाविनी नामजोशी — 15
हौसलों की उड़ान — सादिया अज़ीम — 32

संस्मरण
सूरज सी होती हैं बेटियां — कमला भसीन — 38

अभियान
MUST बोल अभियान — ध्रुव अरोड़ा — 34

पुस्तक परिचय
डेफ़िसिट डॉटर्स: सेक्स सलेक्शन इन तमिलनाडु — जुही — 41

फ़िल्म समीक्षा
अपराजिता — सरिता बलोनी — 43

हमारी बात

हम सबला का यह अंक हमारे युवाओं के नाम है। दुनिया को बदलने को उत्सुक, अपनी मर्ज़ी से अपना जीवन तराशने के लिए तैयार युवाओं के नाम।

हमारे इस देश में बेटियों को बड़ी तादाद में मारा जा रहा है। उन पर मनाहियों और पाबंदियों के अंकुश लगाए जा रहे हैं। कम पोषण, कम शिक्षा, कम अवसर और कम प्यार हमारी किशोरियों के हिस्से में आता है।

दूसरी ओर बेटों पर हम अपनी जान न्योछावर कर देते हैं। वे अपने मनचाहे खेल खेलते हैं, मनपसंद कपड़े पहनते हैं और बचपन से ही अपनी मनमानी करने के आदी हो जाते हैं।

तो क्या हमें इसमें कुछ गलत नहीं लगता? क्या बेटी और बेटे में यह भेदभाव, यह फ़र्क़ सही है? क्या हम यह वाकई मानते हैं कि बेटियां बेटों से कम होती हैं?

हम सबला के इस अंक में हम अपनी किशोरियों का जश्न मना रहे हैं। हमारा मानना है कि बेटी और बेटे दोनों को समान प्यार, समान भोजन, समान शिक्षा और समान अवसर मिलने चाहिए। यह न सिर्फ़ ज़रूरी है बल्कि हर बच्चे का अधिकार भी है।

समानता की शुरूआत हमारे घर, समुदाय और समाज से ही होनी चाहिए। शोषण, दमन और भेदभाव से आज़ाद किशोरी और किशोर ही भविष्य में उन ऊंचाइयों, सपनों और लक्ष्यों को पाने का हौसला रखेंगे जो उन्हें सशक्त, जीवन कौशल से युक्त और परिपूर्ण इंसान बना सकता है।

तो आइए आज ही शुरूआत करें। बेटियों को भी मान-सम्मान और प्यार से सींचे, उन्हें प्रेरणा और सहयोग दें। उनकी पैदाइश पर खुशियां मनाएं और उनके व्यक्तित्व को सराहें।

–जुही

लेख

युवा लड़कियों के अधिकार

एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विभूति पटेल

युवा अधिकार – युवा लड़कियों और लड़कों के अधिकार होते हैं। ये अधिकार युवाओं के शोषण को सम्बोधित करने वाले आन्दोलनों के लिए महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं, जो वयस्कता को युवाओं की भागीदारी से चुनौती देते हुए, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संदर्भो में विभिन्न पीढ़ियों के बीच समानता को प्रोत्साहित करते हैं। ये अधिकार बच्चों, युवाओं, व्यस्कों व बुजुर्गों के बीच संबंधों और व्यवहार में न्याय और ईमानदारी बढ़ाने में भी सहायक होते हैं।

हर इंसान के पास कुछ बुनियादी मानव अधिकार होते हैं, जो उनकी सुरक्षा और दूसरों के साथ सामंजस्य बनाने में मदद करते हैं। अधिकतर लोगों को अपने कुछ अधिकारों जैसे भोजन, आवास, वेतनयुक्त काम आदि की जानकारी भी होती है। पर कुछ अधिकारों के बारे में जानकारी न होने के कारण वे शोषण, हिंसा और भेदभाव का शिकार होते हैं।

हमारे देश की राष्ट्रीय युवा नीति 2003 भारत के युवा लड़कों व लड़कियों के सम्पूर्ण विकास के प्रति वचनबद्धता दोहराती है। यह नीति उनकी वैध आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एक राष्ट्रीय नज़रिया विकसित करने के लिए प्रयासरत है जिससे युवा वर्ग राष्ट्रीय पुनर्निर्माण व सामाजिक बदलावों में अपना योगदान कर सकें। इन नीति का प्रारूप वैश्विक हितों से उभरने वाली चुनौतियों में युवाओं की भागीदारी बढ़ाने और राष्ट्रीय विकास में युवा सक्रियता को महत्व देते हुए 'युवा सशक्तिकरण' पर बल देता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14/15 में समानता के अधिकार की बात की गई है। पर समाज में व्याप्त असमानता को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 15 (3) में दर्ज किया गया है कि राज्य महिलाओं व बच्चों के लिए विशेष प्रावधान पारित कर सकता है।

युवाओं के पास बचपन को पूरी तरह जीने का स्वायत्त अधिकार होता है। वे सुरक्षा, देखभाल, प्यार, सम्मान के भी हक़दार होते हैं। युवाओं के बेहतर विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल व सहायक माहौल मुहैया कराना माता-पिता, परिवार, समाज, शिक्षकों व राज्य का दायित्व होता है। लड़के व लड़कियों को समान मौके व अधिकार प्रदान करना युवाओं के विकास के लिए बुनियादी ज़रूरत है।

बुनियादी शिक्षाः युवा लड़कियों की सशक्तता के लिए शिक्षा मुख्य ज़रूरत है जो आमदनी, स्वास्थ्य और गुणवत्ता बढ़ाने में मददगार रहती है। शिक्षा लड़कियों की समाज में बतौर नागरिक भागीदारी के लिए भी अहम है। परन्तु ज़्यादातर देशों में युवाओं को औपचारिक स्कूली शिक्षा मुहैया नहीं होती और वे अनौपचारिक काम करने के लिए मजबूर होते हैं।

स्वास्थ्य सेवाएंः अधिकांश देशों में स्वास्थ्य सेवाएं युवाओं की ज़रूरतों को ध्यान में नहीं रखतीं। लड़कियों को यौनिकता, माहवारी और प्रजनन की कोई जानकारी नहीं होती। जीवन की शुरूआत से ही वे पुरुष दमन स्वीकारने और अपनी ज़रूरतों को नकारने की आदी हो जाती हैं। जीवन व आजीविका कौशल युवाओं को ज्ञान, व्यावहारिकता और आत्मविश्वास से जीवन जीने में सक्षम बनाता है। आजीविका और रोज़गार के मौके उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ जानकारी युक्त चुनाव करने में भी मदद करते हैं।

सहायक पर्यावरणः हिंसा, दमन, शोषण और भेदभाव से मुक्त माहौल जिसमें समुदाय, समाज, परिवार युवाओं की ज़रूरतों को समझें और उन्हें आगे बढ़ने में सहायक बनें।

भागीदारीः समाज को रूढ़िवादी सोच को बदलने और युवाओं की भागीदारी व बेहतरी सुनिश्चित करने के लिए कुछ प्रमुख अधिकार स्थापित किए गए हैं।

- संयुक्त राष्ट्र जनरल असेंबली 1989 पारित बाल अधिकार समझौता।
- संयुक्त राष्ट्र महासभा पारित (1979) सीडॉ समझौता
- जनसंख्या व विकास अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 1994 पारित प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन तथा पांच वर्ष बाद 1999 में पारित प्रमुख निष्कर्ष दस्तावेज़ (आईसीपीडी + 5)
- चौथे बीजिंग सम्मेलन (1995) में पारित घोषणापत्र व प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन तथा पांच वर्ष पश्चात 2000 का राजनैतिक घोषणापत्र व प्रमुख निष्कर्ष दस्तावेज़ (बीजिंग + 5)

इन विज्ञप्तियों, घोषणापत्रों व समझौतों में युवा अधिकारों की परिभाषा निम्न है —

- उत्तरजीविता व व्यक्तिगत विकास जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, जीवन व आजीविका कौशल तथा रोज़गार प्रशिक्षण शामिल है।
- सर्वोच्च स्तरीय शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का विकास।
- हिंसा, शोषण व भेदभाव से सुरक्षा।
- जीवन को प्रभावित करने वाले मसलों पर स्वायत्तता भागीदारी व अभिव्यक्ति।

सक्रिय कार्यवाहिक ढांचा

इनके अतिरिक्त युवाओं के विकास के लिए गरीबी, असमानता और लैंगिक भेदभाव से परिपूर्ण सामाजिक ढांचों को भी बदलना होगा। इसके लिए सन् 2000 में सहस्राब्धि के विकास लक्ष्यों में कुछ प्रमुख मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है। इनमें प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक व माध्यात्मिक शिक्षा में लैंगिक असमानता को खत्म करना, मातृ मृत्युदर में कमी, युवाओं के लिए योग्य और उत्पादक काम तथा एचआईवी/एड्स संक्रमण की रोकथाम मुख्य हैं।

संयुक्त राष्ट्र फाउंडेशन द्वारा अनुदान प्राप्त कार्यक्रम "लड़कियों के विकास व भागीदारी अधिकारों का सम्मिलन" में केन्द्रीय मुद्दा यूनिसेफ है किशोरियों का विकास। इस कार्यक्रम के तहत युनिसेफ़, डब्लयूएचओ व यूएनएफपीए ने साथ मिलकर युवा लड़के व लड़कियों के अधिकारों पर सक्रिय काम किया गया है। बारह देशों में शुरू किए गए इस कार्यक्रम में पाप्युलेशन काउंसिल, कॉमनवेल्थ यूथ प्रोग्राम, आई.सी.आर.डब्ल्यू तथा फेमिली केयर इंटरनेशनल भी सहायता कर रहे हैं।

गैर सरकारी संगठन हस्तक्षेप

जागोरी (दिल्ली), वाचा (मुंबई), मासूम (पुणे) व सहियर (वडोडरा) जैसे गैर सरकारी संगठन किशोरियों की सशक्तता के लिए जीवन कौशल, शिक्षा व रोज़गार प्रशिक्षण व नेतृत्व विकास कार्यक्रमों का संचालन कर रहे हैं। ये परियोजनाएं ग्रामीण क्षेत्रों की युवतियों के साथ एक व्यापक शिक्षा व स्वास्थ्यवर्द्धक कार्यक्रम चलाकर उन्हें सशक्त बनाने में प्रयासरत हैं।

विवाह की उम्र

मातृ स्वास्थ्य बेहतर बनाने और परिवारों को छोटा रखने में विवाह की उम्र का विशेष महत्व होता है। गैर सरकारी संगठनों ने अप्रशिक्षित किशोरियों तथा बेहतर जीवन विकल्प कार्यक्रम से जुड़ी किशोरियों पर अध्ययन में पाया कि प्रशिक्षण पाने के बाद लड़कियां 18 वर्ष की कानूनी उम्र सीमा पार करने के बाद ही विवाह करती हैं। यह भी पाया गया कि जीवन साथी के चयन में उनकी रज़ामंदी अधिक नज़र आती है।

शैक्षिक स्तर

बेहतर जीवन विकल्प कार्यक्रम के तहत प्रशिक्षित किशोरियां अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी करती हैं। इनमें स्कूल छोड़ने के मामले भी कम दिखाई पड़ते हैं।

आर्थिक सशक्तता और रोज़गार कौशल

अध्ययन में पाया गया कि बेहतर जीवन विकल्प कार्यक्रम

से जुड़ी 99% किशोरियों ने कोई न कोई रोज़गार कौशल अर्जित किया था। उनके पास अपना बैंक खाता तथा अपनी कमाई को अपनी मर्ज़ी से खर्च करने की आज़ादी भी अधिक थी।

सशक्तताः स्वाभिमान, निर्णय क्षमता व आवाजाही

अध्ययन से सामने आया कि प्रशिक्षित किशोरियों में अधिक आत्म विश्वास था। वे अपने विचार व्यक्त करने या बुजुर्गों व समूह के सामने खुलकर बोलने में हिचकिचाती नहीं हैं। वे अपनी शिक्षा, विवाह, रोज़गार, स्वास्थ्य और रोज़मर्रा से जुड़ी बातों पर निर्णय लेने की क्षमता भी रखती हैं। वे सार्वजनिक यातायात का उपयोग करने, अकेले आने-जाने या दोस्तों-सहेलियों के साथ घूमने-फिरने में भी कतराती नहीं हैं।

अंतर्राष्ट्रीय पहल व अगुवाई

राष्ट्रीय इकाइयों के साथ-साथ लैंगिक समता के प्रयास में अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी सहयोग कर रहे हैं। वे निगरानी की भूमिका अदा करते हुए राष्ट्रीय सरकारों पर लक्ष्यों को पूरा करने का दबाव डालते हैं। संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्धि सम्मेलन 2000 में 189 देशों ने सहस्राब्धि घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए।

भारत ने भी इस पर रज़ामंदी देते हुए हस्ताक्षर किए थे। समूह ने आठ प्रमुख लक्ष्यों को सहस्राब्दि के विकास लक्ष्य चुना और 2015 तक इन्हें पूरा करने का संकल्प लिया। इन आठ लक्ष्यों में से दो लक्ष्य लड़कियों व महिलाओं के लिए लैंगिक समानता व शिक्षा तक पहुंच से सीधे संबंध रखते हैं। अगर इनमें कुछ प्रतिशत लक्ष्यों को भी भारत पूरा कर सके तो यह लड़कियों व औरतों की सशक्तता बढ़ाने में कारगार साबित होगा।

इसी तरह संयुक्त राष्ट्र सक्रिय कार्यवाही योजना बीजिंग 1995 के ज़रिये लड़कियों की सशक्तता हेतु निम्न प्रस्ताव दिए गए थे –

- नकारात्मक सांस्कृतिक रवैयों का उन्मूलन।
- शिक्षा, कौशल विकास व प्रशिक्षण में भेदभाव का उन्मूलन।
- स्वास्थ्यकर व पौष्टिक भोजन में भेदभाव का उन्मूलन।
- बाल मज़दूरी का उन्मूलन व स्त्री बाल श्रमिकों की सुरक्षा।
- बालिका शिशु के दर्जे को बेहतर बनाने में परिवार की भूमिका को मज़बूती प्रदान करना।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि युवा किशोरियों के सम्मानयुक्त और शान्तिप्रिय जीवन, जो उन्हें शिक्षा, खान-पान, कौशल विकास के ज़रिए आज़ादी और सशक्तता की ओर अग्रसर करे, के लिए आत्म-संगठन सबसे बेहतर उपाय है। फिर वह दिन दूर नहीं रहेगा जब आंखों में सपने और होठों पर गीत लेकर हर घर में बेटियों का स्वागत होगा।

डॉ. विभूति पटेल, *एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय, मुंबई में प्रोफ़ेसर हैं।*

शोक संदेश

16 मई 2012 को प्रोफ़ेसर लीला दुबे का देहांत हो गया है। प्रोफ़ेसर दुबे का महिला अध्ययन विमर्श में विशेष योगदान है। इस प्रेरणादायक शख्सियत को हम सबला की ओर से भाव-भीनी श्रद्धांजलि।

लेख

भारत में बाल अधिकार

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने

शायद कुछ ही ऐसे लोग होंगे जिन्होंने दो साल की उस बच्ची फ़लक के बारे में सुना, पढ़ा या बात न की हो जिसने कई दिनों के संघर्ष के बाद दिल्ली के मेडिकल अस्पताल में दम तोड़ दिया। जिस चौदह वर्ष की युवती ने फ़लक के साथ लगातार शारीरिक हिंसा की थी जिसके कारण बच्ची को गंभीर शारीरिक चोटें आईं और वह मर गई, उसकी मां नहीं थी। वह ज़िम्मेदारियों के बोझ से दबी एक किशोरी थी जिसने अपनी छोटी उम्र में ही अनेक प्रकार हिंसाओं और पाशविकता का सामना किया था।

हम जानते हैं कि यह बच्ची इस युवती के पास जबरन छोड़ी गई थी। फ़लक की 22 वर्षीय मां को जिस्मफ़रोशी के लिए बिहार व दिल्ली में बार-बार बेचा गया। फिर राजस्थान में उसे एक आदमी के साथ दूसरी शादी करने के लिए बेच दिया गया और उसके बच्चों को अजनबियों के सहारे छोड़ दिया गया।

इस घटना के बारे में यहां बात करने का मकसद मात्र यह समझना नहीं है कि कुछ हिंसक लोगों के कारण तीन लड़कियों की ज़िंदगी नर्क बन गई। बल्कि यह हमारे देश के अनेक और युवाओं के जीवन की समस्याओं की व्यापक रूपरेखा है। फ़लक की जीवनी में वे सभी महत्वपूर्ण मुद्दे शामिल हैं जिनका सम्बोधित किया जाना बेहद आवश्यक है अगर भारत अपनी शर्मनाक समस्याओं से निपटना चाहता है- बाल शोषण, बाल विवाह, बच्चों की खरीद-फरोख्त और बाल मज़दूरी।

अपने काम के माध्यम से *हक़ बाल अधिकार सेंटर* इन्हीं मुद्दों पर, जिनका विकास गरीबी और लैगिंक भेदभाव के परिप्रेक्ष में होता है, सतत काम कर रहा है। इस सच्चाई को निम्न आंकड़ों की मदद से दर्शाया जा सकता है।

लिंग अनुपातः लैंगिक भेदभाव का सबसे चौंका देने वाला पहलू गिरता लिंग अनुपात है। लिंग अनुपात 0-6 व 15-19 उम्र समूह दोनों में लगातार कम हुआ है। 2001 जनसंख्या आंकड़ों में 10-19 उम्र समूह मे 225 मिलियन युवा थे- कुल जनसंख्या का 21.8 प्रतिशत। इन युवाओं में 13-19 वर्ष समूह के आंकड़े 898 (1981) से गिरकर 882 (2001) रह गये। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के वर्ष 2010 के अनुसार भारत के पांच राज्यों- मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, गुजरात, पंजाब में स्त्री भ्रूण हत्या के 111 मामले (कुल भ्रूण हत्या मामलों का 71.2 प्रतिशत) पाए गए। हालांकि 2003 के स्त्री भ्रूण हत्या के दर्ज मामलों में गिरावट दिखाई दी है पर यह सच्चाई बौखला देने वाली है क्योंकि हम जानते हैं कि ऐसे कई मामले पुलिस में दर्ज नहीं किए जाते।

फ़ोटोः हक़-बाल अधिकार सेंटर

2010-11 की परिवार व स्वास्थ्य मंत्रालय की गर्भाधान व प्रसवपूर्ण निदान तकनीक कानून के कार्यान्वयन के समय

39,854 सेंटर पंजीकृत किए गए थे। फिलहाल 462 अल्ट्रासाउंड मशीनें ज़ब्त की गई हैं और 706 कानून उल्लंघन के मामले अदालत में विचाराधीन हैं। प्रमुख मामले रिकार्ड न रखने व अपंजीकृत सेंटर चलाने के हैं। भारत में लगभग एक करोड़ अवैध गर्भपात सलाना किए जाते हैं जो इस बात का संकेत है कि ये पंजीकृत व अपंजीकृत सेंटर कानूनों का खुलेआम उल्लंघन करते हैं।

अन्य कार्यान्वयन तरीकों में देखें तो हर ज़िले में पीएनडीटी कानून के तहत अस्पतालों व निजी क्लीनिकों की स्त्री भ्रूण गर्भपात व तकनीकी अनियमितताओं की निगरानी नहीं की जाती। बच्चों के संग होने वाले अपराध के आकड़ों में स्त्री-भ्रूण हत्या के मामलों को शामिल नहीं किया जाता क्योंकि इनको दर्ज करने में पुलिस की अहम भूमिका नहीं होती।

बाल विवाह

अगर कोई बच्ची पैदा हो भी जाती है तो बाल विवाह की प्रथा उसकी तकलीफ़ों में इजाफ़ा कर देती है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2010 में 18 वर्ष से कम उम्र की किशोरियों को विवाह के लिए अगवा किया गया। अनेकों युवा लड़कियों को निम्न लिंग अनुपात वाले राज्यों में बालिका वधु के नाम पर बेचा जा रहा है। उत्तर-पूर्वी राज्यों से हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान में किशोरियां बेची जा रही हैं। राज्य अपराध रिकार्ड आंकड़ों के अनुसार 2011-12 असम से 1071 बच्चियां व 494 लड़के गायब हुए हैं।

बाल विवाह आंकड़े दर्शाते हैं कि 2010 में बाल विवाह विरोधी कानून के तहत केवल 60 प्रतिशत मामले दर्ज किए गए। दूसरी ओर स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के आंकड़े के अनुसार 15-19 वर्ष के 6.5 प्रतिशत बच्चे विवाहित हैं।

बाल श्रमिक

भारत में विश्व के सबसे अधिक बाल श्रमिक पाए जाते हैं। हमें उस तेरह वर्ष की घरेलू कामगार की कहानी तो याद ही होगी जिसके डाक्टर मालिक विदेश में छुट्टी मनाने गए थे। लड़की ने मीडिया को बताया कि मालिक उसे घर में

फ़ोटो: हक़-बाल अधिकार केंद्र

बंद कर गए और घर में खाने-पीने का कोई सामान नहीं था। भूख से बेहाल होकर लड़की ने शोर मचाकर पड़ोसियों का ध्यान आकर्षित किया।

इस घटना में भी ध्यान देने योग्य अनेक मुद्दे हैं- लड़की का शोषण एक शिक्षित, व्यवसायी शहरी दम्पत्ति द्वारा किया गया था। सवाल यह है कि बाल श्रमिकों की समस्या को हम कैसे सुलझाएं जबकि हमारे समाज के इस उच्च शिक्षित वर्ग में भी बाल अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव है? सच बात तो यह है कि बाल मज़दूरी को खत्म करने की राजनैतिक इच्छाशक्ति मौजूद ही नहीं है। बाल मज़दूरी विरोधी अधिनियम 1986 आज भी खतरनाक व गैर-खतरनाक बाल श्रम के बीच विभाजन करता है और कुछ प्रकार की मज़दूरी को वर्जित करते हुए भी किन्हीं खास तरह के कामों को मात्र नियंत्रित करता है।

बच्चों के साथ हिंसा

ठीक इसी तरह बच्चों के प्रति होने वाली कुछ शारीरिक व मनोवैज्ञानिक हिंसाओं जैसे चांटा मारना, बाल खींचना, कान मरोड़ना आदि को स्कूलों व घर में सामान्य माना जाता है। यौन शोषण वर्ग, लिंग, जाति, नस्ल से अप्रभावित हर जगह व्यापक है। अफसोस की बात तो यह है कि बाल यौन शोषण को भी सम्बोधित करते समय बलात्कार के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की हिंसा को मामूली व आम करार दिया जाता है।

बाल अधिकार व सरकारी प्रयास

60 वर्ष की संवैधानिक और बीस वर्ष की बाल अधिकार घोषणाओं के बावजूद बच्चे अपने बुनियादी अधिकारों से महरूम हैं तो फिर यह स्वभाविक ही है कि हम सरकार से पूछें कि अपने बच्चों के बेहतर जीवन और शोषण मुक्त जीवन के लिए वह क्या कदम उठा रही है?

बच्चों के अधिकारों पर खास ध्यान दिया जाना चाहिए और पिछले बीस वर्षों में सरकार ने बच्चों से जुड़े खास मुद्दों को सम्बोधित करने हेतु विशेष सेवाएं, कानून, इकाइयों, संस्थागत प्रणालियों का गठन भी किया है।

57 कानूनों, 60 प्रावधानों, 9 नीति दस्तावेज़, बच्चों के लिए पंचवषीय योजना में विशेष लक्ष्यों की व्याख्या, मंत्रालयों के तहत केंद्रीय सरकार की बच्चों के लिए खास स्कीमों तथा बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए मंत्रालय व राष्ट्रीय आयोग के गठन के बावजूद हमारे बच्चों की हालत में कोई सुधार नहीं दिखाई पड़ा है। इन सभी प्रणालियों को मनचाहे लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सबल और अधिक सुचारू रूप से काम करने के लिए तैयार करना होगा।

संस्थागत इकाइयां जैसे राष्ट्रीय व राज्य महिला व बाल सुरक्षा आयोग का भी गठन हुआ है। वित्तीय और भौतिक समस्याएं इन संस्थानों की कार्यकुशलता में अवरोध पैदा करती हैं जबकि न्यायपालिका के निर्णयों के आने के साथ-साथ कानूनी कार्यान्वयन में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

इसी प्रकार विशेष कानूनों, विशेष पुलिस, कचहरी, सेवाओं तथा खास प्रणालियों और कर्मचारियों की मौजूदगी होने के बावजूद भूमिकाओं में अस्पष्टता, प्रशिक्षण और प्रलोभन की कमी तथा काम करने की मंशा का अभाव बच्चों के हक़ों के कार्यान्वयन में रूकावट पैदा करता है।

भारत में भारी तादाद में बच्चे कुपोषण का भी शिकार हैं। हमारे देश में दुनिया के सबसे अधिक बाल मज़दूर है और सबसे ज़्यादा यौन शोषण के मामले सामने आए हैं। इन समस्याओं को समाधान जल्दी और सुचारू रूप से किया जाना आवश्यक है जिसके बच्चों के अधिकार महफूज़ रह सकें।

11वीं पंचवर्षीय योजना 2007-12 में पहली बार बाल अधिकार के विकास पर एक अलग पाठ जोड़ा गया है।

फ़ोटो: हक़-बाल अधिकार सेंटर

केन्द्रीय बजट में भी बच्चों की विशेष स्कीमों के लिए अलग से पूंजी आबंटन भी किया गया है। पर यह बदलाव बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। साथ ही नीतियों का वास्तविकता में परिवर्तन एक दूर का लक्ष्य ही प्रतीत होता है।

तो फिर इन समस्याओं का समाधान क्या है?

मूल सुविधाओं के निजीकरण, विदेशी निवेश, सामाजिक खंड के खर्चों में कटौती, उपयोगी वस्तुओं पर कर लगाने या अंतर्राष्ट्रीय दाता संस्थानों से ऋण जैसे उपायों से बच्चों के अधिकार सुरक्षित नहीं होने वाले।

समय की मांग है कि सही आंकड़े और शोध के आधार पर विशेष निवेश किया जाए क्योंकि सटीक आंकड़ों की कमी अक्सर अनुचित और प्रभावहीन नियोजन का कारण बनती है।

बच्चों से जुड़े कार्यक्रमों और स्कीमों के उपयोगी कार्यान्वयन के लिए उचित संसाधन मुहैया कराना भी अति आवश्यक है। *हक़ बाल अधिकार सेंटर* ने अपने शोध अध्ययन में पाया है कि बच्चों के कार्यक्रमों के लिए बहुत कम बजट आबंटन किया जाता है। पिछले दशक में केन्द्रीय बजट का कुल 4 प्रतिशत बाल कल्याण के लिए नियत किया और इसका भी ठीक से उपयोग नहीं हुआ। लिहाज़ा पूंजी व कार्यान्वयन दोनों को एक साथ मिलकर गम्भीरता से बाल कल्याण की दिशा में काम करना होगा। इसके अतिरिक्त समाज और लोगों के रवैयों, सोच और व्यवहार में परिवर्तन ही हमारे बच्चों को उनके बुनियादी हक़ दिला सकता है।

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने, *हक़-बाल अधिकार सेंटर से जुड़ी हैं।*
अन्य जानकारी के लिए सम्पर्क
HaQ-centre for child rights

कहानियों की दुनिया में लड़की

सुमन केशरी

कहानियों की दुनिया कितनी अच्छी होती है मां
कहानियों की दुनिया
इन कहानियों में
राजा हैं, रानियां हैं
राक्षस हैं, शैतान हैं
चतुर और खुराफाती मंत्री हैं
देवता हैं, असुर हैं
अंधी बुढ़िया और कोख बंधाने वाली बहू है
और तो और मां
इन कहानियों में पशु-पक्षी भी हैं
कैसी अच्छी दुनिया होती है मां
इन कथा-कहानियों की दुनिया

कहानियों में कई-कई बरस
पलभर में बीत जाते हैं
दुख होता है जो सालता नहीं
तीरें तलवारें चलती हैं
पर चोटों में दर्द नहीं होता
तुम कहती-कहती सो जातीं
हम सुनते-सुनते सो जाते
कभी नींद में खलल नहीं पड़ती है
कैसी अच्छी ये कहानी है
कैसी अच्छी ये दुनिया है

दुख आते हैं राजा के घर
रानी भगा दी जाती है
कुंवर-कुंवरी का लालन-पालन
जंगल के हवाले होता है
जंगल में पलने-बढ़ने वाले
सिंहों की सवारी करते हैं
अश्वमेध की सेना से
हठबल के सहारे भिढ़ते हैं

रानी के तब भाग हैं जगते
महलों में बुलाई जाती है
राजा-रानी की जय-जय की
हुंकार लगाई जाती है
अंधी बुढ़िया को गणपति की
अनुकंपा हासिल होती है
नाती-पोतों, धन-दौलत से
उसकी दुनिया भी बदलती है

अम्मा
दुष्टों का दलन हुआ करता
अच्छों के भाग ही खुलते हैं
कहानी में दिन जल्दी फिरते
रोने वाले सब हंसते हैं

पर मां
ऐसा क्यों होता है कि
कहानी में भी औरत रोती है
वन को जाती और कोख बंधाती
दिन फिरने को वो तरसती है
यह बात मुझे कुछ खलती है
तुम कुछ तो कहो अम्मा मेरी
कोई ऐसी कथा सुनाओ आज
जिसमें हो जीत तेरी-मेरी

पर देखो तुम तो लगीं रोने
अब ऐसा क्या कहा मैंने
कोई नई कथा सुनाओ तुम
बस इतनी मांग रखी मैंने

अब बैठो तुम बिटिया बन के
और कथा कहूं मैं कुछ तन के
अम्मा दिन फिरते हैं सबके
यह बात तुम्हीं तो कहती हो...

सुमन केशरी *हिन्दी साहित्य जगत की जानी-मानी लेखिका-कवयित्री हैं।*

लेख

फ़ोटो: अक्षरा

चल चलें मेले में

युवती मेला: प्रभावकारी सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम

वीणा शिवपुरी

कहते है ना कि जो कुछ कक्षा, किताबें और मास्टरनी जी नहीं सिखा पातीं वह खेल-खेल में बड़ी आसानी से सीखा जा सकता है। क्यों न हो। खेल के समय माहौल हल्का-फुल्का होता है। सखी-सहेलियों का साथ होता है। हंसी-मज़ाक और आनंद होता है। ऐसी ही सीखने-सिखाने की एक जगह है- युवती मेला।

युवती मेलाः क्या और क्यों?

जैसा कि नाम से ज़ाहिर है कि यह एक मेला है और युवतियों के लिए है। युवती यानी 16 से 25 वर्ष की आयु की लड़कियां। इस उम्र के दौरान हम लड़कियों के शरीर के भीतर और बाहर बदलाव आते हैं। मन और भावनाओं में उथल-पुथल होती है। हमारे प्रति परिवार और समाज के लोगों की नज़र और उनका बर्ताव बदलने लगता है। घर और बाहर दोनों जगह हमारी भूमिका भी बदलती है। अब बचपना खत्म होकर हम युवाओं की गिनती में आ जाती हैं। हमसे उम्मीदें की जाती हैं, हम पर ज़िम्मेदारियां डाली जाती हैं। अनेक युवतियां तो ब्याह कर ससुराल के अजनबी वातावरण में पहुंच चुकी होती हैं। कुल मिलाकर यह दौर अनेक बदलावों का दौर है।

ये सारी चीज़ें काफी परेशान कर देती हैं। कारण यह है कि अपने ही मन, शरीर और सामाजिक भूमिका के बारे में हमारी जानकारी नहीं के बराबर होती है। शरीर के भीतर क्या घट रहा है, मन बेचैन क्यों रहता है, अजीब

मूल खेलः छल्ला फेंक

'छल्ला फेंक' आमतौर पर मेलों में या समुद्र के किनारे खेलते हुए देखा जा सकता है। इसमें खिलाड़ी ज़मीन पर रखे हुए घरेलू इस्तेमाल के छोटे-छोटे इनामों पर एक छल्ला फेंकने की कोशिश करता है। यह खेल खिलाड़ी की सही निशानेबाज़ी की परख करता है। हर खिलाड़ी को तीन छल्ले मिलते हैं। आमतौर पर इनामों की दूरी तथा छल्लों के हल्केपन के कारण सही निशाना लगा पाना कठिन होता है।

रूपान्तरित खेलः स्वयंवर/दूल्हा चुनो

रूपान्तरित खेल में खेल का बुनियादी ढांचा वही रहता है बस इसका उद्देश्य इनाम जीतने के स्थान पर चर्चा का विषय चुनना हो जाता है। इस खेल में एक बड़े कपड़े पर ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली की रूपरेखा बनी हुई होती है। ताश की ईंट के आकार के इसके खानों में संख्याएं लिखी होती हैं। सामने दीवार पर लगे चार्ट पर इन संख्याओं की व्याख्या लिखी होती है। छोटे घरेलू इनामों की जगह यहां रूई भरे हुए छोटे 'दिल' होते हैं। छल्ला फेंक की तरह यहां भी भागीदारी/खिलाड़ी को बांस के बने तीन छोटे छल्ले, चीज़ों पर यानी रूई भरे दिलों पर फेंकने होते हैं।

फ़ोटोः अक्षरा

उद्देश्य

इस खेल का उद्देश्य युवतियों की शादी तथा रिश्तों से जुड़ी आकांक्षाओं, डरों तथा उम्मीदों को बाहर निकालना है। जन्म कुंडली के प्रतीक का इस्तेमाल इसलिए किया गया है क्योंकि प्रायः शादी से पहले दूल्हे और दुल्हन की कुंडली मिलायी जाती है। अधिकतर युवतियों के जीवन साथी के चुनाव में उनकी अपनी पसंद के लिए कोई खास जगह नहीं होती। दीवार पर लगे चार्ट में शादी से जुड़ी विभिन्न परिस्थितियां, विकल्प और चुनाव दिए जाते हैं। उद्देश्य यह है कि भागीदार यह सोचे कि उसे शादी तथा अपने जीवनसाथी से क्या आशाएं हैं। इस खेल के पीछे छिपा संदेश यह भी है कि एक लड़की स्वयं अपनी कुंडली लिख सकती है या अपने जीवन की दिशा तय कर सकती है।

सी इच्छाएं और संवेदनाएं क्यों उठ रही हैं। इन सबके बारे में बताने वाला कोई नहीं होता। मां, चाची, ताई या सास कुछ बात करती भी हैं तो वह डांट और टोका-टाकी के रूप में ही होती है। सिर्फ़ सहेलियों के साथ अपने मन के डर संशय और सवाल बांटे जा सकते हैं। वह भी छिपते-छिपाते कानाफूसियों में। उनसे जो जानकारी मिलती भी है वह अधकचरी और कई बार बिल्कुल गलत होती है, जिनसे शरीर, यौन संबंध, स्त्री-पुरुष के रिश्ते जैसे अहम विषयों पर गलत सोच बन सकती है।

यह एक बड़ा कारण है, जिसके चलते हमारे समाज में लड़कियों की (और लड़कों की भी) किशोर/युवा अवस्था बहुत तनावपूर्ण होती है। औरतों/बच्चों के साथ काम करने वाले समूहों ने यह महसूम किया कि इस आयु वर्ग की लड़कियों को शिक्षा/सूचनाओं की बहुत ज़्यादा ज़रूरत है।

मूल खेलः नौ डिब्बे (नाइन पिन्ज़)

'नौ डिब्बों का खेल', खिलाड़ी के निशाने और दूरी के अनुमान को परखता है। नौ डिब्बे अथवा बोतलें एक त्रिभुज के आकार में एक के ऊपर एक जमाई जाती हैं। नीचे की पंक्ति में चार, उसके ऊपर तीन और फिर दो बोतलें रखी जाती हैं। खिलाड़ी को तीन मौके मिलते हैं जिसमें वह एक नर्म गेंद मारकर उन डिब्बों/बोतलों को गिराने की कोशिश करती है। हर बार जब सभी बोतलें गिर जाती हैं, तो खिलाड़ी को नम्बर मिलते हैं।

रूपान्तरित खेलः फाइटर हमेशा जीतता है

खेल का बुनियादी ढांचा वही रहता है केवल बोतलों के स्थान पर डिब्बे रखे जाते हैं। भागीदार उसी प्रकार से डिब्बों के पूर त्रिभुज को गिराने के लिए गेंद से निशाना साधती है। डिब्बों को फिर से जमाना आसान होता है। तथा उन्हें अलग-अलग रंगों से रंगा जाता है। डिब्बों पर लिखी संख्याएं चार्ट पर भी होती हैं। भागीदारी द्वारा चार्ट पर लिखी टिप्पणी पढ़कर उसमें से एक संख्या चुनने के लिए कहा जाता है। वह चुने हुए नम्बर के डिब्बे को अपनी गेंद का निशाना बनाती है। उसे तीन गेंदे या तीन मौके मिलते हैं जिनमें उसे अपने चुने हुए डिब्बे/टिप्पणी को निशाना बनाना होता है।

नीचे कुछ टिप्पणियों/संदेशों के उदाहरण दिए गए हैं। रूपान्तरित खेल का उद्देश्य औरतों को सामाजिक भेदभाव की पहचान करने तथा अपना विरोध जतलाने के लिए प्रोत्साहित करना है। गेंद को फेंककर उस पर मारना विरोध का प्रतीक है।

फ़ोटोः अक्षरा

1. ओह, फिर से बेटी नहीं।
2. बेटे परिवार का नाम चलाते हैं।
3. आगे क्यों पढ़ना है? तुम्हें तो शादी करनी है।
4. कॉलेज जाने की जगह, घर का कामकाज सीखो।
5. दहेज ही औरत का उत्तराधिकार है।
6. लड़के घर का काम नहीं करते।
7. तुम्हारा परिवार जानता है कि तुम्हारी भलाई किसमें है।
8. अंधेरे से पहले घर लौट आना।
9. अपने भाई से बराबरी मत करो।
10. लड़कियों के लिए शादी करना ज़रूरी है।
11. एक बार तुम्हारी शादी हो जाए फिर हमारी ज़िम्मेदारी नहीं हो।
12. मर्दों को अपनी भूमिका निभाने दो और औरतों को अपनी।
13. लिंगों के बीच ऊंच-नीच होना दुनिया का तरीका है।
14. बासी खाना मर्दों को नहीं दिया जा सकता।

उद्देश्य

औरतें गेंदों के खेल शायद ही कभी खेलती हैं। उद्देश्य यह नहीं है कि सभी डिब्बों को गिराया जाए बल्कि सामान्य रूप से होने वाले भेदभावों की पहचान करके उन पर बातचीत करना है। जब एक भागीदार अपने चुने हुए भेदभाव की ओर गेंद का निशाना लगाती है तो वह उस पर अपना गुस्सा दिखाकर उसका विरोध कर रही होती है। उसके तीन चुनाव की ही कार्यकर्ताओं तथा अन्य भागीदारों के साथ चर्चा का आधार बनते हैं।

मूल खेलः शहर पर बमबारी

'शहर पर बमबारी' खेल 'चार कोनों खेल' से मिलता जुलता है। चार शहरों के नामों वाली पर्चियां कमरे के चार कोनों में रख दी जाती हैं। खेल संचालिका टेप या रेडियो पर संगीत बजाती है और भागीदारों से कहती है कि वे कमरे में एक बड़े गोले में दौड़ें। जैसे ही संगीत बंद होता है सभी भागीदार बचाव के लिए कमरे के किसी कोने की ओर दौड़ पड़ती हैं। संचालिका अपने पास मौजूद चार पर्चियों में से एक उठाकर उस पर लिखे शहर का नाम पढ़ती है और उस शहर वाले कोने की सभी भागीदार खेल से बाहर हो जाती हैं। एक बार फिर से संगीत शुरू होता है और भागीदार दौड़ने लगती हैं। अंत में बचने वाली एकमात्र भागीदार को विजयी माना जाता है।

रूपान्तरित खेलः विचारधारा बदलो/मिथकों पर बमबारी

बमबारी का अर्थ है किसी चीज़ को नष्ट करना। हम समाज में प्रचलित जैव आधारित जेंडर की धारणा को नष्ट करना चाहेंगे। खेल का मूल ढांचा वही रहता केवल शहरों के नामों की जगह जेंडर भूमिका से जुड़ी आम लोकोक्तियों की पर्चियां होती हैं। खेल संचालिका संगीत शुरू करती है और भागीदार कमरे में दौड़ने लगती हैं। जब संगीत बंद होता है तो उन्हें तुरन्त किसी कोने में जाना होता है। भागीदारों की संख्या के हिसाब से चार या छः कोने तय किए जा सकते हैं। प्रत्येक कोने अथवा नियत स्थान पर एक चर्चा पर कोई आम लोकोक्ति लिखी होती है। कार्यकर्ता इन लोकोक्तियों वाली छः पर्चियों में से एक चुनती है और पढ़कर सुनाती है। उस लोकोक्ति वाले कोने में खड़ी भागीदार उस मिथक के पक्ष में बोलती है जबकि बाकी सब उसका विरोध करती हैं। आमतौर पर खूब जोशपूर्ण बहस शुरू हो जाती है।

कुछ मिथक जिन पर 'बमबारी' की जा सकती है निम्न हैं:

1. पुरुष बेहतर होते हैं।
2. औरतों को बच्चों की तरह कभी-कभी पीटना पड़ता है।
3. पुरुष ज़्यादा अक्लमंद होते हैं इसलिए वे अगुवाई करते हैं।
4. दहेज एक सामाजिक रिवाज है इसलिए इसका पालन करना चाहिए।
5. घरेलू हिंसा एक पारिवारिक मामला है।
6. शराबखोरी के कारण हिंसा होती है।
7. औरतों का बलात्कार प्रायः अजनबी लोग करते हैं।
8. भड़काऊ कपड़े पुरुषों को औरतों को छेड़ने के लिए उकसाते हैं।
9. औरतों को अंधेरा होने से पहले घर लौट आना चाहिए।
10. परिवार के भीतर औरतों के साथ कोई हिंसा नहीं होती।

उद्देश्य

यह खेल कार्यवाही तथा चर्चा का इस्तेमाल करके घरेलू व यौन हिंसा तथा समाज की गलत जेंडर धारणाओं से पर्दा उठाता है। चर्चा के लिए दो समूह बनाए जाते हैं- एक मुद्दे के पक्ष में और एक-विपक्ष में जिससे एक दमदार बहस को बढ़ावा मिलता है।

शुरूआत में व्यस्क औरतों के साथ काम करने वाली संस्थाओं ने परिवार की किशोरियों/युवतियों को भी अपने साथ जोड़ा। इससे काफी फायदा मिला। उनकी जानने-समझने की इच्छाओं और सवालों का पता चला लेकिन इसमें कमियां भी दिखाई दीं। परिवार की बड़ी औरतों के समाने युवतियां खुलकर अपने मन की बात नहीं कर पातीं। कार्यकर्ताओं के लिए भी उनकी मौजूदगी में यौन संबंध, गर्भ निरोधक, जेंडर भेदभाव जैसे मुद्दे उठाना मुश्किल होता है। लड़कियों के लिए अलग संस्थाएं बनाने या बैठकें आयोजित करने की भी अपनी समस्याएं थीं। सुबह का समय स्कूल, काम या घरेलू ज़िम्मेदारियों में चला जाता है। शाम को उनके अकेले आने-जाने पर बंधन होते हैं। इन सबका समाधान एक बड़े रोचक विचार में मिला। वह था युवती मेला।

फ़ोटोः अक्षरा

इसका श्रेय मुंबई की संस्था 'अक्षरा' को जाता है। उनका कहना है कि युवती मेले का विचार 1997 में रांची में हुए महिला आंदोलन के राष्ट्रीय सम्मेलन में पैदा हुआ। सम्मेलन से लौटते समय सबको महसूस हुआ कि यहां सभी सरोकार औरतों से जुड़े थे। युवतियों से जुड़े मुद्दे बांटने और उन पर चर्चा करने के लिए कोई जगह नहीं थी। जबकि आज की किशोरियां/युवतियां कल की औरतें हैं। यही उम्र है जब उनकी सोच और रवैये बनते और पक्के होते हैं। इसी उम्र में उनके मन में भय और कमतरी का अहसास घर कर सकता है। जबकि इसी उम्र में वे अपनी ताकत और अहमियत के प्रति सचेत हो सकती हैं। इसलिए उन्हें एक ऐसी जगह देने की बहुत ज़रूरत है जहां वे खुलकर बात कर सकें। अपने सरोकारों को स्वर दें और जेंडर न्याय से जुड़े मुद्दों पर अपनी समझ साफ कर सकें। यहां वे रणनीतियों पर चर्चा कर सकती हैं। एक जुट हो सकती हैं। युवती मेले ने युवा औरतों को एक ऐसा मंच दिया, जहां मेलों में खेले जाने वाले प्रचलित खेलों के ज़रिए उनके नारीवादी नज़रिए को तराशा जा सके।

मेले सदियों से हमारे सामाजिक जीवन का एक हिस्सा रहे हैं। मेला और मंदिर ही शायद ऐसी दो जगहें हैं जहां प्रायः लड़कियों/औरतों को अपनी सहेलियों के साथ जाने की छूट होती है। मेले के साथ जुड़ी होती है खेल-कूद, मौज-मस्ती की भावना जो उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती है।

युवती मेलाः प्रक्रिया और फायदे

यह एक दिन भर का कार्यक्रम है जो रविवार या किसी छुट्टी के दिन आयोजित किया जा सकता है। इसके लिए एक बड़ा हॉल या मैदान चाहिए जहां छोटे-छोटे स्टाल या दुकानें लगाई जाती हैं। इन स्टालों पर अलग-अलग खेल खिलाए जाते हैं। एक दो युवतियां खेल में हिस्सा लेती हैं और बाकी दर्शक होती हैं। हर स्टॉल कम से कम दस युवतियों को व्यस्त रख सकता है। खेलों के ज़रिए कुछ मुद्दे उठाए जाते हैं और फिर होती है उन पर खुली बातचीत। बातचीत में दर्शक युवतियां भी अपनी बात कह सकती हैं। यह सारी प्रक्रिया चलाने और चर्चा को सही दिशा देने के लिए हर स्टाल पर एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता का मौजूद होना ज़रूरी है।

इस प्रकार मेला आयोजित करने के लिए स्थान के अलावा खेलों की सामग्री और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की भी ज़रूरत होती है।

खेल हम सबके जाने-पहचाने होते हैं जैसे सांप-सीढ़ी, छल्ला फेंक वगैरह लेकिन उनका रूप कुछ अलग होता है। इन खेलों को युवतियों के जीवन से जुड़े कुछ अहम मुद्दों के चारों ओर बनाया जाता है।

मिसाल के लिए –

- औरतों व मर्दों के बीच काम का मौजूदा बंटवारा
- लड़कियों के साथ होने वाली छेड़छाड़
- लड़कियों के सपने और जीवन लक्ष्य
- सही जीवनसाथी का चुनाव
- लड़कियों के साथ होने वाला भेदभाव
- घिसी पीटी सोच/भूमिका

युवती मेले में खेलों के स्टॉलों के अलावा अलग-अलग मुद्दों से जुड़े सूचना कक्ष भी होते हैं जहां चित्रों, पोस्टरों, चार्टों आदि की मदद से खास विषयों के बारे में सूचनाएं दी जाती हैं। अपनी इच्छा और रुचि के हिसाब से युवतियां उन कक्षों में जाकर हर विषय पर जानकारी हासिल कर सकती हैं। सवाल पूछ सकती हैं। यहां शरीर, स्वास्थ्य, यौन संक्रमण, यौन संबंध, गर्भ तथा गर्भ निरोधक, कानूनी अधिकार, सामाजिक सोच मिथक जैसे अनेक विषयों पर जानकारी मिल सकती है। वे इनसे जुड़े अपने डर और गलतफ़हमियां दूर कर सकती हैं। एक स्वस्थ जागरूक सोच पा सकती हैं।

- युवती मेला युवतियों से सम्पर्क साधने, उनसे बात करने, उन्हें सोचने पर मजबूर करने और उनके मन की बात जानने का लाजवाब तरीका है।
- इसमें बहुत बड़ी संख्या में युवतियां भाग ले सकती हैं जो कार्यशाला/बैठकों में संभव नहीं है। दिन भर चलने वाले मेले में युवतियों के समूह लगातार आते और जाते रह सकते हैं। इस प्रकार एक मेला 500 से 1000 युवतियों से जुड़ सकता है।
- युवती मेले का माहौल मौज मस्ती का होता है। वहां सभी युवतियां हम-उम्र होने के कारण बेझिझक बात कर सकती हैं।
- गंभीर वातावरण की तुलना में यहां वे आसानी से मुद्दों को समझ लेती हैं। साथ ही शंकाओं का समाधान करने के लिए सवाल भी पूछ सकती हैं। जो शायद वे किसी कार्यशाला बैठक या कक्षा के माहौल में न कर पाएं।
- युवती मेले के खेलों और सूचना कक्षों को किसी क्षेत्र विशेष की समस्याओं के हिसाब से बदला या नया रूप दिया जा सकता है। यह सिर्फ़ एक खाका है जिसमें हर संस्था अपनी ज़रूरत के हिसाब से रंग भर सकती है।

नोटः अन्य स्थानों पर युवती मेला के अनुभव को दोहराने में सहायक होने के उद्देश्य से अक्षरा ने 'युवती मेला जेंडर समानता के लिए खेल तथा प्रशिक्षण' नामक पुस्तक प्रकाशित की है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्कः

अक्षरा

501, नीलाम्बरी रोड संख्या-86

दादर (पश्चिम) मुंबई - 400 028

दूरभाषः 022-24316082

ई-मेलः aksharacentre@vsnl.com

वीणा शिवपुरी *अनुवाद-सम्पादन के साथ-साथ महिला संबंधी मुद्दों पर लिखती हैं।*

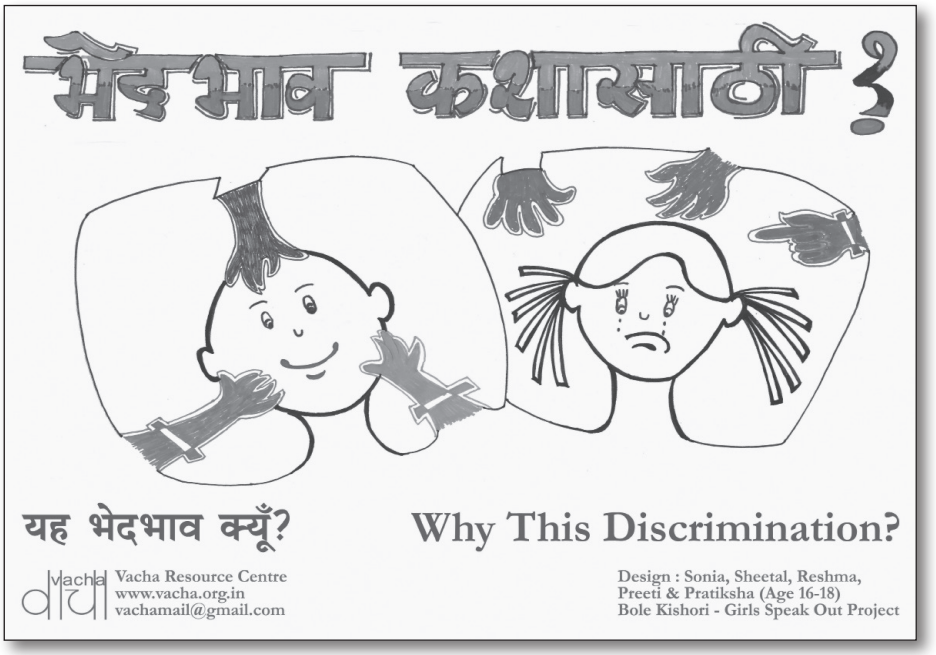

किशोरियों के साथ वाचा

मेधाविनी नामजोशी

वाचा महिला *एवं किशोरी संसाधन केन्द्र* पिछले 25 सालों से महिलाओं की समस्या और संगठन तथा सशक्तिकरण के कामों से जुड़ी है। वाचा पिछले एक दशक से 10 से 20 साल की किशोरियों के साथ उनके सशक्तिकरण पर काम कर रही है। हम लड़कियों के साथ खासतौर पर काम करते हैं ताकि उनका आत्मविश्वास बढ़े और जीवन के अनेक अनुभवों, कठिनाइयों का सामना करने के लिए उन्हें संसाधनों की जानकारी मिले।

हमारे समाज में लड़के और लड़कियों में बहुत भेदभाव किया जाता है। लड़कियों के जीवन का संघर्ष तो उनके जन्म को नकारा जाने से ही होता है। अगर इससे बचकर लड़कियों ने जन्म लिया भी तो सेहत, शिक्षा जैसे ज़रूरी संसाधनों तक वे पूरी तरह पहुंच नहीं पाती हैं। विशेष रूप से जब वह किशोरावस्था में पहुंच जाती हैं तो उन पर और भी ज़्यादा पाबंदियां लागू होती हैं। किशोरावस्था में लड़कों और लड़कियों के बीच फ़र्क़ पर भी ज़्यादा गौर नहीं किया जाता। यह अवस्था लड़कों में आज़ादी, और उत्साह लाती है। लड़कियों के लिए किशोरावस्था इन सब एहसासों के साथ पाबंदियां, रोक-टोक और घर के काम से जुड़ी ज़िम्मेदारियां लाती है। सच तो यह है कि हमारे समाज में बचपन अभी छूटा भी नहीं कि लड़कियों को औरत के रूप में ढालने की शुरूआत हो जाती है।

हम मुंबई की जिन बस्तियों में काम करते हैं वहां पर बसे लोग ज़्यादातर मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र के अलग-अलग इलाकों से मुंबई में कामकाज की तलाश में आते हैं। सालों से मुंबई में आकर बसने के बावजूद भी अपने गांव और वहां के तौर-तरीक़ों से वे बहुत गहरा संबंध रखते हैं। इसके कारण आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग से होने के कारण किशोरियों को अपने विकास के लिए कम अवसर मिलते हैं।

बाहरी समाज से इन किशोरियों का संबंध सिर्फ़ स्कूल के ज़रिए ही होता है। जब अनेक सामाजिक तथा पारिवारिक ज़िम्मेदारियां होने के कारण वे बड़ी तादात में शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकल जाती हैं, तब शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास के सारे अवसर उनसे छीन लिए जाते हैं। इसी कच्ची उम्र में समाज व परिवार उन्हें मां व बीवी के रूप में ढालने की शिक्षा और अपेक्षा करने लगता है। इन सब वजहों से किशोरियों की क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वह अक्सर हिंसा और उपेक्षा का शिकार होती हैं। हम मानते हैं कि अपने सशक्तिकरण के सारे अवसरों व संसाधनों पर हर तबके से आने वाले किशोरियों का भी अधिकार है। अगर आज वह सक्षम बनती हैं तो वे कल की सभी चुनौतियों का सामना सजगता और आत्मविश्वास से कर सकेंगी।

इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर हम अलग-अलग गतिविधियों के माध्यम से लड़कियों के साथ काम करते हैं ताकि उनमें अपनी बातें कहने, अपने अधिकार समझने, जेंडर का उनके जीवन पर होने वाला असर को जानने, अपने विकास के संसाधन समझने तथा अपनी परिस्थिति से जूझने की क्षमता बढ़ सके।

वाचा संस्था 12 बस्तियों में युवाओं के लिए संसाधन केन्द्र चलाती है। इनमें से 6 केन्द्र सिर्फ़ युवतियों के लिए है और बाकी लड़के और लड़कियों दोनों के लिए हैं।

जहां पर सिर्फ़ लड़कियों के केन्द्र चलते हैं वह लड़कियों की एक खास जगह बन गई है। एक ऐसी जगह जहां पर उनके उठने, बैठने व बात करने के तौर-तरीक़ों पर कोई पाबंदी नहीं है। जहां पर उनको लड़की हो तो चुप रहो ऐसा नहीं सुनना पड़ता। जहां वह एक दूसरे के साथ बातें कर सकती हैं, अपनी समस्याएं व सपने एक दूसरे से बांट सकती हैं। समाज में युवकों के लिए ऐसी कई जगहें मौजूद हैं जहां वे अपने हमउम्र साथियों के साथ मिल बैठ सकते हैं, आपस में दोस्ती कर सकते हैं जिससे उनका एक सामाजिक दायरा बनता है। वाचा केन्द्रों द्वारा यही अवसर युवतियों को दिया गया है।

इन केन्द्रों में उनके साथ की जाने वाली गतिविधियां कुछ इस प्रकार की हैं —

- मूल अंग्रेज़ी व कम्प्यूटर का प्रशिक्षण
- जीवन कौशल
- अलग-अलग विषयों की कार्यशालाएं जैसे- सेहत और किशोरावस्था, स्वच्छता, फ़ोटोग्राफी, नुक्कड़ नाटक, चित्रकला तथा हस्तकला, जेंडर, सामान्य ज्ञान, खाद्य अधिकार आदि।
- मोबाइल लाइब्रेरी
- सरकारी अस्पताल, डाकघर, रेलवे स्टेशन, राशन की दुकान, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की जानकारी
- सेहत और जेंडर मेला
- फ़िल्म शो और चर्चा
- चित्र और लेखन प्रतियोगिता
- आरोग्य जांच

मुंबई शहर में अगर थोड़ा बहुत अंग्रेज़ी बोलना आता है तो दुकानों, मॉल्स या अमीरों के घरों में अच्छी तनख्वाह वाला काम मिल जाता है। कम्प्यूटर की शिक्षा भी आज हरेक के लिए ज़रूरी हो गई है। सरकार भी अब कई सारी जानकारियां ऑनलाइन कर रही है। ऐसे में कम्प्यूटर का इस्तेमाल न आना लड़कियों और महिलाओं को विकास के अवसरों से दूर ले जाने का काम करता है। इसी को ध्यान में रखते हुए वाचा युवतियों को वर्ड, पॉवर प्वांइट, एक्सेल, इंटरनेट की शिक्षा देती है। अंग्रेज़ी के साथ-साथ उनको देवनागरी लिपी में भी काम करने की शिक्षा दी जाती है। अलग-अलग कार्यशालाओं के माध्यम से उन्हें ज़रूरी जानकारी जैसे सेहत, किशोरावस्था व जेंडर के बारे में जागृत किया जाता है। अन्य ज़रूरी कौशल जैसे शब्दकोश या नक्शा पढ़ना, अपनी खुद की बस्ती का नक्शा बनाना भी सिखाया जाता है।

किशोरियों के व्यक्तित्व को नए आयाम देने के लिए उन्हें नुक्कड़ नाटक, सभा में भाषण करना जैसे कौशल भी सिखाए जाते हैं। हमारे समाज में जहां औरतों और लड़कियों को खामोश रहना एक अच्छी औरत की/लड़की की निशानी होती है वहां इस प्रकार समाज में सबके सामने बोलने की ताकत मिलना बहुत मायने रखता है।

वाचा से मिले प्रशिक्षण के आधार पर युवतियां अपनी खुद की पत्रिका भी प्रकाशित करती हैं। हर केन्द्र की तरफ से साल में दो बार यह पत्रिका प्रकाशित की जाती है। आज तक हर केन्द्र द्वारा 7 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। किशोरियों को इस काम का प्रशिक्षण दिया जाता है और फिर हर बस्ती में अलग-अलग समितियों का गठन किया जाता है। यह समितियां निश्चित करती हैं कि किसका साक्षात्कार कब और कौन करेगा, फोटो कौन से जाएंगे, समस्याएं कौन सी उठाई जाएंगी तथा संपादन की ज़िम्मेदारी किसकी होगी।

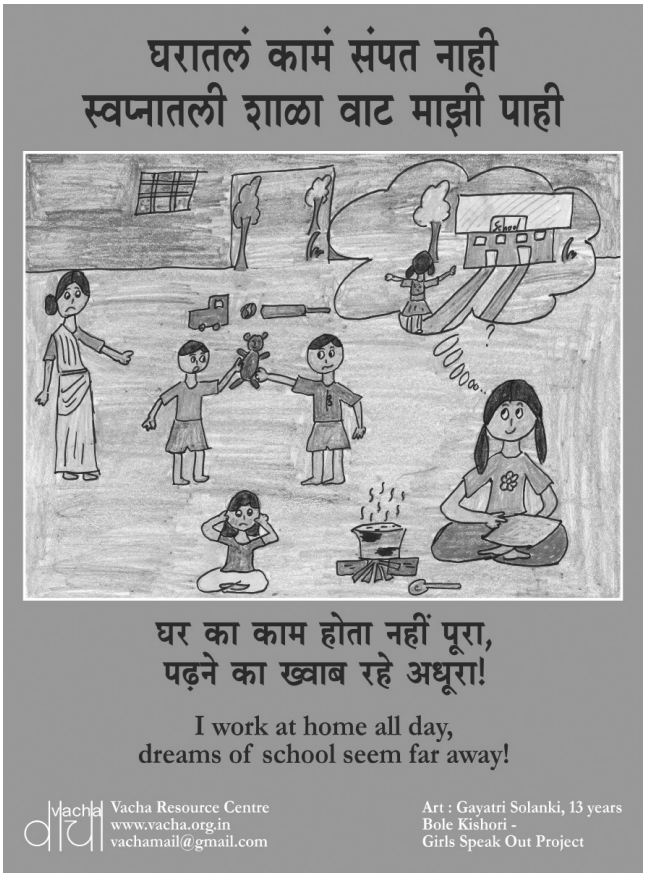

इन पत्रिकाओं को 15 अगस्त और 26 जनवरी के अवसर पर बस्ती में लड़कियों के बनाए हुए कोलॉज, पोस्टर्स, चित्र प्रदर्शनी के साथ सजाया जाता है। अलग-अलग विषयों पर आधारित नुक्कड़ नाटक और गानों का भी कार्यक्रम होता है। लड़कियां नुक्कड़ नाटक और भाषणों द्वारा हासिल की हुई जानकारी समाज तक पहुंचाने का अवसर पाती हैं।

लड़कियों की उभरती समझ, अभिव्यक्ति तथा तकनीक का कौशल देखकर लोगों का उनके प्रति नज़रिया बदलता है। वाचा की लड़कियों ने आज तक पत्रकार परिषद, राष्ट्रीय परिसंवाद तथा अध्यापक संगठन के प्रतिनिधियों के सामने भी पॉवर प्वांइट के माध्यम से अपनी बातें रखी हैं।

किशोरियों को तकनीकी तथा कम्प्यूटर, कैमरे जैसे साधनों का इस्तेमाल सिखाने से उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अभिव्यक्ति के नए तरीके सीखती हैं।

लड़कियां जब कैमरे लेकर अपनी बस्ती में घूमती हैं तो उन्हें कई बार अपने परिवार व बस्तीवालों के तानों या विरोध को सहना पड़ता है। हमारी बस्ती में जब एक लड़की फ़ोटो खींच रही थी तब उसके पिता ने गुस्सा होकर उससे कैमरा छीन लिया और उसका सेंटर आना भी बंद करवा दिया था। हमारे कार्यकर्ता ने बड़ी सावधानी से लड़की के पिता को समझाया। उसी बस्ती में जहां लड़के लड़कियों को तंग करते थे वहां लड़कियों के फोटो देखकर सब इतने प्रभावित हुए कि उस बस्ती में आज एक युवा समूह गठित हुआ है जिसमें लड़के और लड़कियां दोनों शामिल हैं।

लड़कियों की पत्रिका में नाले साफ़ न होने की बात को पढ़कर स्थानीय नगर सेवक ने तुरन्त सफ़ाई का काम करवाया। तब से लड़कियां नियमित रूप से उनके पास अपनी समस्याएं लेकर जाती हैं।

पिछले साल में किशोरियों द्वारा ली गई तस्वीरों की प्रदर्शनी मुंबई के जाने माने काला घोड़ा फेस्टिवल में हुई थी। इस फेस्टिवल में हमारी दो लड़कियों ने दूसरा और तीसरा स्थान हासिल किया है।

लड़कियों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करना, अपनी आवाज़ बुलंद करके समाज में उठ खड़े होने की ताकत देना बहुत महत्वपूर्ण होता है। पर साथ ही यह हम सबके लिए एक बड़ी ज़िम्मेदारी भी होती है क्योंकि अपने परिवार व समुदाय को साथ लेकर हर क़दम सावधानी से उठाना ज़रूरी है।

मेधाविनी नामजोशी, *वाचा महिला एवं किशोरी संसाधन केन्द्र में कार्यरत हैं।*

भिन्न

अनामिका

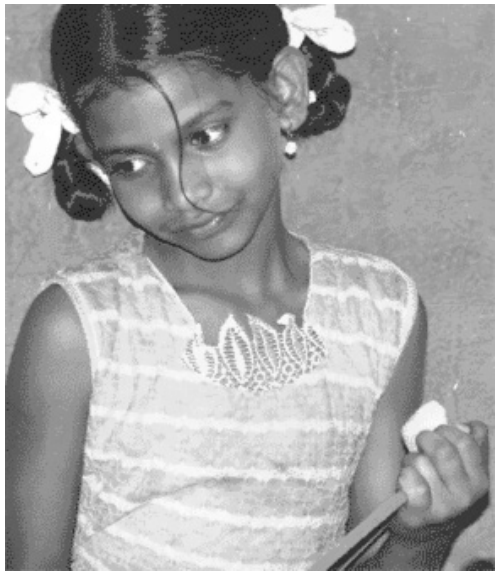

मुझे भिन्न कहते हैं-
किसी पांचवीं कक्षा के क्रुद्ध बालक की
गणित पुस्तिका में मिलूंगी-
एक पांव पर खड़ी – डगमग!
मैं पूर्ण इकाई नहीं,
मेरा अधोभाग
मेरे माथे से जब भारी पड़ता है-
लोग मुझे मानते हैं ठीक-ठाक,
अंग्रेज़ी में 'प्रॉपर फ्रैक्शन'!
मेरा माथा अगर कहीं गलती से
मेरे अधोभाग से भारी पड़ जाए,
लोगों के गले यह नहीं उतरता
और मेरे माथे पर बट्टा लग जाता है-
'इंप्रॉपर फ्रैक्शन' का!

क्या माथा अधोभाग से भारी होना
इतना अनुचित है- मेरे मालिक, मेरे आका?
क्या इससे बढ़ जाती है मेरी दुरूहता?
कितने बरस अभी और रहेंगे आप
इसी पांचवीं कक्षा के बालक की मनोदशा
में?
लगातार मुझे काटते-छांटते,
गोदी में मेरी
नन्हीं इकाइयां बिठाकर
वहीं लंगड़ी भिन्न बनाते
तीन होल नंबर, फलां बटा फलां?
कब तक बंटना, कब तक छंटना-
देखिए मुझे अपने अंतिम दशमलव तक
-फिर कहिए, क्या मैं बहुत भिन्न हूं आपसे?

अनामिका *हिन्दी साहित्य जगत की मशहूर नारीवादी लेखिका-कवयित्री-अनुवादक हैं।*

लेख

फ़ोटोः सेंटर फ़ॉर सोशल रिसर्च

किशोरियों की तस्करीः दर्जा व प्रभाव

रंजना कुमारी

यूएनओडीसी के अनुसार मानव तस्करी की परिभाषा निम्न हैः किसी भी व्यक्ति को धमकी, दबाव, ज़ोर-ज़बरदस्ती धोखे, या अन्य तरीक़ों से शोषण हेतु नियुक्ति, आश्रय, खरीद-फरोख़्त, हस्तान्तरण, लेन-देन, छुपाकर रखना या अगवा करना। यह मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन है जो पीड़ितों को उनके मूल व व्यापक व्यक्तिगत अधिकारों से वंचित करता है।

मानव तस्करी ड्रग्स व हथियारों की तस्करी के बाद विश्व के हर राष्ट्र को प्रभावित करने वाला तीसरे नम्बर का संगठित अपराध है। अनुमानित है कि विश्व में एक समय पर ढाई करोड़ लोगों की तस्करी की जाती है। यूनिसेफ़ के अनुसार इनमें से 1.2 करोड़ अबोध बच्चे होते हैं। इस अपराध के ज़रिए विश्व स्तर पर सालाना 36.1 अरब डालर का मुनाफ़ा होता है— यानी हर व्यक्ति पर 13000 डालर की कमाई।

मानव तस्करी मुख्यतः यौन व आर्थिक शोषण के मकसद से की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 43% पीड़ित यौन शोषण व 32% जबरन मज़दूरी में धकेले जाते हैं। इसके अलावा मानव तस्करी जिस्मफरोशी, वेश्यावृति, पोर्नोग्राफी, कपड़ा उद्योग, भीख मांगने, नशीले पदार्थ बेचने, स्मगलिंग, अंग व्यापार उद्योग, कृषि व निर्माण उद्योगों के लिए भी की जाती है।

लड़कियों, बच्चों व औरतों के साथ लैंगिक भेदभाव तथा गरीबी उन्हें तस्करी के प्रति अधिक असुरक्षित बनाता है। सामाजिक व्यवहार व रवैये घरेलू हिंसा, शोषण के कारण लड़कियों को ज़बरदस्ती कुछ खास उद्योगों के काम करने के लिए बेचा या मजबूर किया जा सकता है। कम शिक्षा, जानकारी की कमी, अधिकारों के प्रति कम जागरूकता के कारण लड़कियां शोषण और हिंसा का शिकार होती हैं। आर्थिक सुरक्षा का अभाव उन्हें ऐसी जगह काम के लिए पलायन करने को विवश कर देता है जहां मानव तस्करी का खतरा ज़्यादा रहता है। यौन उद्योग का विकास भी वेश्यावृति के लिए लड़कियों व बच्चों की मांग को बढ़ाता है।

मानव तस्करी का शिकार होने वालों में ज़्यादा संख्या लड़कियों व बच्चों की होती है। हमारी कमज़ोर कानून कार्यान्वयन प्रणाली तथा अफ़सरों में संवेदनशीलता की कमी मानव तस्करी के पीड़ितों को और अधिक प्रभावित करती है।

भारत मानव तस्करी के लिए स्रोत, पारगमन व गन्तव्य देश है। यहां मानव तस्करी का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक वेश्यावृति व जबरन श्रम है। हालांकि बढ़ते हुए गर्भ चयनित गर्भपात व स्त्री भ्रूण हत्या से गिरते लिंग अनुपात के कारण विवाह के उद्देश्य से भी लड़कियों की तस्करी की जाती है।

हर साल मानव तस्करी किए गए ढाई करोड़ लोगों में सवा दो लाख दक्षिण एशिया से आते हैं। और इनमें से 80% लड़कियां वेश्यावृति में धकेल दी जाती हैं। यूनिसेफ़ के आंकड़ों के अनुसार दक्षिण एशिया में लड़कियों व बच्चों की खरीद-फ़रोख्त नियंत्रण से बाहर होती जा रही है। अनुमानित है कि भारत में मानव तस्करी द्वारा वेश्यावृति के लिए आने-जाने वाली लड़कियों में से 60% 12-16 वर्ष की किशोरियां हैं।

किशोरियों के इस अवैध व्यापार के पीछे ग़रीबी, सामाजिक, आर्थिक तथा लैंगिक भेदभाव प्रमुख कारण है। यूएस सरकार की मानव तस्करी रिपोर्ट 2010 के अनुसार अवैध व्यापार व तस्करी का शिकार होने वाले लोगों में से 90% समाज के सबसे कमज़ोर, अरक्षित व गरीब वर्ग के होते हैं जो अपने जीवन में अनेक प्रकार के भेदभाव सहते हैं।

अनुपयुक्त कानून व नीतियां

भारतीय संविधान में पंद्रह मानव तस्करी विरोधी प्रावधान मौजूद हैं पर इनके बीच मौजूद असमानताओं व तालमेल का अभाव इनके कार्यान्वयन में अवरोध पैदा करता है।

अनैतिक तस्करी रोकथाम अधिनियम 1956 यौन शोषण के लिए औरतों व बच्चों की तस्करी पर रोक लगाने के लिए बनाया गया था। परन्तु अभियुक्त तस्करों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल होने वाले प्रावधानों का उपयोग पीड़ितों के विरूद्ध भी किया जाता है जो उन्हें उबारने की जगह उनका और अधिक दमन करता है। इस कानून में संशोधन की मांग महिला व बाल विकास मंत्रालय द्वारा मानव संसाधन विकास विभाग के समक्ष रखी गई है।

कानूनों की मौजूदगी के बावजूद दोषियों के ख़िलाफ़ उचित कानूनी कार्यवाही नहीं हो पाती है। एनएचआरसी द्वारा पुलिस अफ़सरों के साथ किए गए एक अध्ययन से मालूम चला कि साक्षात्कार किए गए 852 अफ़सरों में से 40% ने कभी भी मानव तस्करी के बारे में सुना नहीं था, तथा 80% के लिए यह एक निम्न प्राथमिकता थी या फिर महत्वपूर्ण विषय नहीं था। न्यायपालिका स्तर पर देखें तो अवैध तस्करी के मामले यहां साल दर साल खिंचते रहते हैं। भष्ट्राचार और पैसों के बल पर दोषी व्यक्ति उचित सज़ा से बच निकलते हैं।

मानव तस्करी की बढ़ती मांग

जिस्मफ़रोशी, यौनकर्म, वेश्यावृति, सस्ते श्रम जैसे उद्योगों की बढ़ती मांगों के कारण मानव तस्करी का बाज़ार दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है। जब तक यह मांग रहेगी मानव तस्करी का अपराध कानूनी बचाव के रास्ते तलाश करके फलता-फूलता रहेगा।

मानव तस्करी के प्रभाव

मानव तस्करी की प्रक्रिया पीड़ित और व्यापक समुदाय पर विध्वंसक प्रभाव छोड़ती है। 95% भुक्तभोगी शारीरिक व मानसिक हिंसा का अनुभव करते हैं, 90% के साथ यौन हिंसा और लगभग सभी के साथ मनोवैज्ञानिक हिंसा होती है। ये शारीरिक, यौनिक और मनोवैज्ञानिक शोषण अनेक स्वास्थ्य समस्याएं पैदा करता है।

मानव तस्करी से जुड़े मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण उदासीनता, उत्सुकता, आत्म-विस्मृति, मानसिक आघात जैसी समस्याएं सामने आई हैं। पीड़ित खुद को नुकसान पहुंचाने वाली हरकतें करते हैं और दोबारा अपने पारिवारिक व सामुदायिक जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने में खुद को असमर्थ पाते हैं।

ये मनोवैज्ञानिक प्रभाव और ज़्यादा बढ़ते हैं जब पीड़ितों को न्यायिक व कानूनी प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ता है। इसलिए बहुत ज़रूरी है कि पुलिस, न्यायपालिका, परिवार व समुदाय पीड़ित के प्रति संवेदनशीलता और सहयोगी

भूमिका अदा करें जो उनकी मनोवैज्ञानिक सेहत के लिए बहुत अहम ज़रूरत है।

फ़ोटो: सेंटर फ़ॉर सोशल रिसर्च

मानव तस्करी के पीड़ितों को यौन उद्योगों, कृषि निर्माण तथा फैक्ट्रियों के प्रदूषित और श्रमसाध्य माहौल में काम करने की वजह से पीठ दर्द, देखने-सुनने में तकलीफ़ जैसी शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएं भी होती हैं। गरीबी और कुपोषण के कारण बच्चों का सही विकास भी नहीं हो पाता।

वेश्यावृति व जिस्मफ़रोशी से जुड़ी 80% किशोरियों को यौन संक्रमण, एचआईवी यौन अंगों के कटने-फटने-गलने जैसी गंभीर बीमारियां हो जाती हैं। उचित स्वास्थ्य सेवा के अभाव में उन्हें सही समय पर इलाज व संक्रमण और छूत के रोगों से बचाव नहीं मिलता जिससे उनकी सेहत लगातार गिरती चली जाती है।

भारत में मानव तस्करी पर प्रतिक्रिया

यह बहुत ज़रूरी है कि भारत में मानव तस्करी की समस्या को जड़ से मिटाने के लिए खास ध्यान दिया जाए। इसके लिए तीन स्तरों पर काम करना आवश्यक है- मानव तस्करी की रोकथाम, अपराधियों को सज़ा तथा उत्तरजीवियों की सुरक्षा व पुनर्वास।

हमारे देश में मानव तस्करी को सम्बोधित करने वाले अधिकांश कार्यक्रम यौन उद्योगों पर ही केंद्रित हैं, वे समस्या को जड़ से खत्म करने वाले कारणों पर ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार सरकार व पुलिस छोटे दलालों पर अंकुश लगाती है। बड़े तस्करों व संगठित रूप से काम करने वाले सरगना खुले-आम, आज़ादी घूमते हैं जिससे इस अपराध की रोकथाम नहीं हो पाती।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी द्विपक्षी श्रम समझौतों की आवश्यकता है जिससे अंतर-देशीय खरीद-फ़रोख्त को नियंत्रित किया जा सके।

भारत में मानव तस्करी का शिकार पीड़ितों को वेश्यावृति या अवैध श्रमिकों के रूप में अक्सर गिरफ्तार किया जाता है। इससे इन पीड़ितों पर दोहरी मार पड़ती है। ज़रूरत है इनके प्रति एक संवेदनशील व सहयोगी व्यवहार की जिससे इन्हें न्याय मिल सके।

इसके अतिरिक्त मानव तस्करी की उत्तरजीवी किशोरियों को पुनर्वास और दोबारा अपना सामान्य जीवन शुरू करने के लिए सहयोगी कार्यक्रम व मौकों की भी ज़रूरत है। सामाजिक सहयोग के कार्यक्रमों से ही इन उत्तरजीवियों को दोबारा समुदाय से जोड़ा जा सकता है।

पुरुषों व लड़कों की भूमिका अहम है

मानव तस्करी का मुद्दा केवल औरतों के प्रयासों से हल नहीं किया जा सकता। हमारे सामुदायिक व व्यापारिक ढांचे में औरतों के जीवन पर पुरुषों का नियंत्रण होता है। परिवार के भीतर पुरुष यौन संबंध, परिवार नियोजन, स्त्री शिक्षा, विवाह तथा गर्भ निरोध जैसे मसलों को नियंत्रित करते हैं। समुदाय में पुरुषों का नियंत्रण रोज़गार, स्वास्थ्य सेवाओं, कानूनी सहयोग तथा अधिकारों की जानकारी जैसे मुद्दों पर रहता है।

पुरुषों की इस सत्ता को मद्देनज़र रखते हुए यह ज़रूरी है कि उन्हें मानव तस्करी से जुड़ी परियोजनाओं में भागीदारी बनाया जाए। महिला सशक्तिकरण व अधिकारों जैसे कार्यक्रमों में पुरुषों को जोड़ने से वे इन मुद्दों पर खुलकर बातचीत कर सकेंगे। यह भागीदारी उनके नज़रिए व व्यवहार को बदलने के लिए भी अधिक प्रभावशाली रहेगी।

पुरुष अक्सर महिला अधिकारों को नज़रअंदाज़ कर देते है क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे उनका कोई सरोकार नहीं है। इसलिए ज़रूरी है कि पुरुषों को इन मुद्दों व औरतों और समुदाय पर इनके प्रभावों के प्रति जागरूक बनाया जाए जिससे वे औरतों के अधिकारों में सहयोगी भूमिका अदा कर पाएं।

डॉ. रंजना कुमारी, *सेंटर फ़ॉर सोशल रिसर्च की निदेशिका हैं।*

कुतिया

मृणाल पाण्डे

उसकी बड़ी-बड़ी काजर-अंजी आंखों ने अभी डरना या जबरन लजाना नहीं सीखा था। एक स्तब्ध कौतूहल से वे कैमरे के लेंस को बिट-बिट ताकती थीं। उसकी गोद में सर धर बाल-वधू का दूल्हाः देसी कुत्ता-बुलेट गले में फूल हार डाले हुए सभी दूल्हों की तरह उनींदा-उदासीन दिखता पसरा हुआ था। खाट पर बदस्तूर चित्त लेटे-लेटे अखबार पढ़ रही थी। अचानक नज़र उस चित्र पर अटकी तो पट से मैं उठ बैठी। लाल झीने घूंघट से अधढंका, बच्ची का ताज़ा तोड़े बैंगन सा, वह सुन्दर आबनूसी चेहरा हमें निसंकोच घूर रहा था।

लड़की के बाप ने दस-पन्द्रह हज़ार रुपए खर्च कर पूरे समारोह से बेटी को कुत्ते से ब्याहने का ज़ोरदार अनुष्ठान किया था। सिंदूर-दान, शंख-लोहे की चूड़ी पहनाना, उलूध्वनि, मंत्रोच्चार सब हुआ। बाद में ज़ोरदार बहू भात परसा गया, जिसमें मछली, पुलाव, चिकन कोरमा, मछली के मूंड के साथ पकी दाल, रसगुल्ला, पान सब था। बुलेट के पक्ष के सब लोगों ने खूब दबाकर खाया। और फिर कल तक की अंजु कर्मकार, पितृकुल का गोत्र छोड़कर सारमेय गोत्र की कुतिया बन गई थी।

इसी से बच्ची का अनिष्ट कटेगा। गांव वालों ने पत्रकारों से कहा। जब से जनमी थी तब से बाबा रे, कष्ट ही कष्ट। बार-बार गिरना, चोट खाना! कभी दांत टूटता, कभी हाथ-गोड़। दो बार तो डूबते-डूबते बची थी छोकरी! निष्कर्ष निकाला गया कि हो न हो छोकरी के ग्रह टेढ़े हैं। लम्बी, कुटिल याददाश्त वाली बुढ़ियों को याद आने लगा, कि उसका पहला दांत भी, आहा, आठवें महीने में ही निकल आया था! कुदृष्टि लेकर जनमी है अभागी, घोर कुदृष्टि! खानदान में दो बार पहले भी ऐसी ही लड़कियां जनमी थीं। उन दोनों को भी कुत्ते से ब्याहा गया, जब जाकर कुल का ग्रहदोष कटा था।

सो अंजु के लिए कोई अच्छा सा कुत्ता तलाशा जाने लगा। एक परिचित के घर बुलेट पल रहा था। वहां बात चलाई गई, और जल्द ही तय हो गई। बारात चढ़ी ब्याह हुआ, और उलू-ध्वनि के बीच बुरे ग्रहों से बचाने के लिए एक बच्ची को कुतिया बना दिया गया।

मैं मुंह बाए यह पढ़ रही थी, कि कंधे पर गदा की तरह सींक और फूल की दो-दो झाड़ू रखे शुभदा ने मेरे कमरे में प्रवेश किया!

'उठो मां उठो! जल्दी करो मुझे अभी चार घर और जाना है,' शुभदा ने झाड़ू की पीठ को फर्श पर ठोंकते हुए मुझसे साधिकार कहा। हर वक्त हड़बड़ी में रहने वाली शुभदा पास की ही एक झुग्गी-बस्ती से मुहल्ले में काम करने को आती है। चारेक बरस हुए, उसका मालिक हारान अचानक उस चार बच्चों की मां को अपने भाग्य पर छोड़कर, किसी सियार की जाई जादूगरनी के प्रेम पाश में बंध-बंधाया सीमापुरी साइड की एक झुग्गी में रहने चल दिया था। तब तक शुभदा दो घर पकड़े हुए थी। अब उसने पांच पकड़ लिए हैं। पांचवा, यानी मेरा, उसे तब कुछ अनिच्छा से ही पकड़ना पड़ा था, जब मेरी पुरानी बाई, शुभदा की बेटी अन्नदा भी बाप की

ही तरह अचानक अपने बूढ़े पति को छोड़कर किसी पोण्टू की प्रेम-डोर में खिंची-खिंचाई किसी जमुनापारी बस्ती में जा बसी। जाते-जाते उसने अपनी मां से कहा था, कि उसकी एवज में वह टी.वी. वाली मैडम के घर भी सुबह-सुबह चार पोंछा मार जाया करे; उसे बड़ी दिक्कत है।

मैं अन्नदा की कृतज्ञ हूं। मेरे जैसे इकलखोरे लोगों के काम का अक्सर बड़ा बीहड़ टाइमटेबल होता है। सुबह-सुबह जितना घर का काम हो गया, सो हो गया। उसके बाद तालाबंदी के अलावा चारा नहीं। शुभदा ने कहा वह ठीक सात बजे सुबह आ जाएगी, मंज़ूर है? हां मेरी मां, मंज़ूर है। सो बस पकड़कर वह अलस्सुबह मेरे घर आ जाती है। मैं चाय बनाती हूं, अपने लिए भी और उसके लिए भी। फिर मैं जहां कहीं होऊं, वहां से मुझे बाहर हंकाल कर वायुवेग से वह अपना काम शुरू, कर देती है।

'पैर उठाओ मां, शुभदा मुझसे कहती है।' पर इससे पहले कि मैं तखत पर पंखे से फरफराते अखबार को दबोचे सेही की तरह गुडी मुडी गठरी बनूं, मैं उसे बुलाकर फोटो दिखाती हूं।

'पहले ये देखो, प्यारी है न बच्ची।'

'बच्ची है, प्यारी तो लगेगी ही। पर रंग की काली है।'

'इसके बाप ने इसे एक कुत्ते से ब्याह दिया है।'

'बाप है, लड़की को किसी से ब्याह दे, किसी का क्या?'

'अरे कानूनन अठारह से कम, लड़की का ब्याह करना जुर्म है।'

'मनुष्य से ना! कुत्ते से तो नहीं।'

'फिर भी ब्याह तो दिया ही ना? जेल होगी अब उसे, देखना।'

'अहा, कुत्ते से ब्याहा तो क्या बुरा किया?'

'खराब ग्रह होंगे छोकरी के। हमारे गांव में भी एक को ऐसे ही पीपल के पेड़ से ब्याह दिया गया था, एक को तुलसी के पौधे के संग! उनका नसीब!'

'पर किसी ग्रह दोष वाले लड़के को भी कभी ऐसे ब्याहा गया ये तो नहीं सुना।'

'ऐसे लड़के भी होते हैं। पर उनको तो मां पांच पैसे में किसी गरीब को बेच देंगे, फिर तीन या छः पैसे में खरीद लेंगे। ऐसा होता है। खरीद के बाद नाम रख देंगे पांचू या तिनकौड़ी या छकौड़ी! कोई-कोई उनको घूरे पर रख के भीख में उठा लेते हैं। वो हो गया भिखारी। किस्सा खत्म। पर लड़की का ऐसा है मां कि उसका तो गोत्र भी बदलना हुआ? नहीं, तो गलग्रह बन के छोकरी खानदान की छाती पर ही पड़ी रहेगी। पाप लगेगा बाप को, घोर पाप!'

'पर कुत्ता ही क्यों छांटा ब्याहने को?'

'क्यों नहीं? क्या बुरा है कुत्ते में? इंसान की तरह शराब पीके तो नहीं आएगा? बहू से मारपीट तो नहीं करेगा? उसके बाप-भाई से हाथघड़ी या साइकिल की मांग करके घर तो सर पर नहीं उठाएगा? देखो कैसा पड़ा हुआ है बेचारा। चुपचाप उसकी गोद में सर देके? बहू दो रोटी डाल देगी तो उसका हाथ ही तो चाटेगा, दांत नहीं दिखाएगा।'

'किसी दिन अपनी किसी जात वाली के पीछे चल दिया तो?'

'अरे ये क्या औरत का जाया नहीं करता? कम से कम ये लौट के फिर उसी के पास जाएगा, जो उसे रोटी देती है! तीन बच्चे गोद में और एक उसके पेट में छोड़ के किसी डायन के साथ हमेशा के लिए गायब नहीं हो जाएगा। अब देखना मां, बच्ची की हारी-बीमारी सब जाती रहेगी! खोटे ग्रह अपने आप भूल जाएंगे उसको! होता है, ऐसा होता है।'

'हारी-बीमारी है, तो डाक्टर के पास जाने से जाएगी। ये कुत्ता-बिल्ली से गठजोड़ कराने से क्या?'

'डाक्टर? सरकारी डाक्टर क्या जाने बुरी किस्मत क्या चीज होती है? गरीबनी के मन में क्या पक रहा है, उसे जानने का वक्त भी होता है क्या? बिना सर उठाए, बिना आला लगाए छः गोली का पर्चा लिख दिया, एकाध सुई लगा दिया! हुआ। तीन दिन बाद फिर जाकर, हाल वैसा ही है कहो तो कहता है, अच्छा खाना खाओ, आराम करो, खुश रहो। सिर्फ़ दवा से पूरा फायदा नहीं होगा। हूं ह्! आराम! शुभदा जाला ऐसे झाड़ती है जैसे दीवारों को पीट रही हो। अरे आराम ही हमारी किस्मत में होता तो हम जनम भर कीड़ों की उस बस्ती में पड़े रहते?'

'लिखा है पुलिस मामले की जांच कर रही है।'

'हां! पुलिस! उसे क्या?'

'अरे, चार बरस की बेटी का ब्याह कर दिया। गैरकानूनी काम किया, तो जांच नहीं होगी क्या,'

'कुत्ते से भी मत ब्याहो, क्या ऐसा लिखा है उस कानून में?'

'नहीं। लेकिन'

'कौन गवाही देगा मां-बाप के ख़िलाफ़? क्या कुत्ता अदालत में जा के कहेगा कि हां शादी हुई है?'

शुभदा, हसंते-हंसते झाड़ू दरवाज़े से अगले कमरे में फेंक कर फिनायल की बालटी में पोंछा डुबोती है!

'हंसने की बात नहीं शुभदा' मैं कहती हूं। पर उसके हंसी से फुद-फुद फुदकते आनंदी चेहरे की छूत मुझे भी लग रही है। अनचाहते भी मैं हंस रही हूं।

'अरी मेरी मां। कम से कम ये कुतिया का जाया रात-बिरात शराब पीके तो घर नहीं लौटेगा? बहू को कच्चा-पक्का खाना परसने पर लात-घूंसों से धुनेगा तो नहीं? उसके घरवालों से कभी साइकिल और कभी हाथघड़ी की फरमाइश भी नहीं करेगा। काला कुत्ता ही भला हमारे ऐसे मर्दुओं से, मां।'

'पर बेचारी बच्ची'

'अरे कैसी बेचारी? खुश है। उसे जामा-कपड़ा मिला होगा, मिठाई मिली होगी। बुलेट से खेलने का साथ हो गया। चार बरस की बच्ची को और क्या चाहिए?'

'पर जब बड़ी होगी'

'जब बड़ी होगी तब तक भी दुनिया बदलेगी नहीं उसके लिए- पैर ऊपर करो'- शुभदा पोंछे का विराट अर्द्धचंद्राकार वार करती है! यह कमरा हो गया। उस पर तृप्ति की नज़र डालकर, शुभदा पोंछा बालटी में वापस फेंकती है, और तखत के पास उकड़ूं बैठकर धोती की छोर से गुटके का आधा पैकिट खोलकर ब्रह्मानंद में लीन हो जाती है! फिर पीक गुलगुला कर वह बाहर थूक आती है... 'तुम मानो ना मानो मां, बुरे ग्रह बड़ी खतरनाक चीज होते हैं... इसीलिए तो दुनिया में इतना जादू टोना चलता है... मेरे बगल में है एक टोनही, जानो? पूत-भतार कुछ नहीं, पर खूब ठाठ से रहती है... सब जानते हैं कि वो काला जादू साधती है... पिछले हफ्ते हरामजादी मेरे बच्चों को अपनी गली में खेलने पर रगेदने लगी... सब चुप रहे, ऐसा खौफ है उसका... रात को मेरे छोटे वाले को टणमण बुखार, और दे उलटी पर उलटी... फिर मेरा माथा भी गरम हुआ... अपनी दोस्त को लेके मैं भी गई पटपड़गंज की मदर डेरी वाली एक टोनही के पास... एक बोतल दारू, एक देसी मुर्गा और इक्यावन रुपए! तब का दिन है, आज का दिन है टोनही दिखाई नहीं दी किसी को। और मेरा बच्चा ठीक-ठाक है। अब तुम्हीं बताओ, कौन डाक्टर और पुलिस ऐसे पटापट निबटाता हमारा मामला?'

यूं शुभदा का काम और कथा- वाचन लगभग एक साथ उस बिंदु पर, जहां मालकिन और नौकरानी या मनुष्य और कुत्ते या पुलिस और टोनही या मां और चुड़ैल में फ़र्क़ खत्म हो जाता है।

'निष्फिकर रहो मां,' वह जाते-जाते कहती है। 'कुत्ते से ब्याही वह अभागी लड़की नहीं मरेगी, हां मनुख से ब्याही ज़रूर मर सकती थी।'

मृणाल पाण्डे *हिन्दी साहित्य की वरिष्ठ लेखिका व पत्रकार हैं।*

संवाद

बाघ तो बच गये, पर बेटियां?

मृणाल पाण्डे

खबर है कि गए दस सालों में हमारे देश में बाघों की तादाद बढ़ी है, लेकिन खबर यह भी है कि इस दौरान 0 से 6 साल की उम्र की बच्चियों की तादाद तेज़ी से घटी है। बाघ हमारा राष्ट्रीय पशु है। आरक्षित श्रेणी में आता है। चूंकि उसकी खाल, हड्डी, दिल, गुर्दा सबको एशियाई बाज़ारों में भारी मुनाफ़े पर बेचा जा सकता है, पिछले सालों में लालची तस्करों ने बड़ी तादाद में बाघों की चोरी छुपे हत्या कर अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में उनके अवशेषों की इतनी कालाबाज़ारी की कि यह प्रजाति दुर्लभ हो चली थी। तब 'बाघ बचाओ' की बड़ी मुहिम छेड़ी गई जिससे तमाम स्कूल, टीवी चैनल और गैर सरकारी संगठन आ जुड़े। तस्करों पर छापे पड़े, धर पकड़ की गई और मीडिया को जन चेतना जगाने वाले विज्ञापनों से पाट दिया गया। अब खबर आई है कि बाघों की तादाद लगभग हर संरक्षित वन में बढ़ रही है— बधाई।

पर कन्या शिशु की प्रजाति का क्या होगा? वह तो आज भी उपेक्षित-अरक्षित है, सबसे ज़्यादा अपने घर के भीतर, परिवार के अपनों द्वारा वह गर्भ में लिंग निर्धारण के बाद गर्भपात से, जन्म लेते ही गुपचुप सौरी में, और फिर भी बची रही तो लगातार उपेक्षा और कुपोषण से सुखा कर पांच वर्ष की होते न होते मारी जा रही है। नतीजतन अभी वर्ष 2011 की दस साला जनगणना के जो सरकारी आंकड़े आए हैं उनके अनुसार 0 से 6 साल के आयु वर्ग में वर्ष 2001 में जहां 1000 लड़कों के पीछे 927 बच्चियां थीं, आज सिर्फ़ 914 बची हैं।

वैसे कहने को देश में औरत मर्दों के बीच औसत लिंगानुपात में सामान्य सुधार हुआ है। लेकिन यह सांत्वना का विषय नहीं। पिछले दस सालों में आबादी में औरतों की तादाद बढ़ी दिखने की असल वजह यह है कि इन बरसों में कुल आबादी भी बढ़ी है। बच्चियों के क्रमशः लोप होने के असल आंकड़े तो कुल व्यस्क औरतों, मर्दों के बीच आबादी में बड़े असंतुलन के रूप में तनिक आगे जाकर उजागर होंगे। यह भी चिंता का विषय है कि बच्चियों की तादाद जिन राज्यों (दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, दादरा-नगर हवेली, नागालैण्ड, मणिपुर तथा सिक्किम) में सबसे तेज़ी से घटी है, उनका स्तर आर्थिक, स्वास्थ्य कल्याण सुविधाओं और शैक्षिक पैमानों पर देश के सामान्य औसत से बेहतर हैं। यानी मात्र पिछड़े राज्यों में व्यापक गरीबी और अशिक्षा के कारण उतनी बच्चियां नहीं मर हीं जितनी की खाते-पीते, तरक्की कर रहे राज्यों में। खाते-पीते लोगों के बीच।

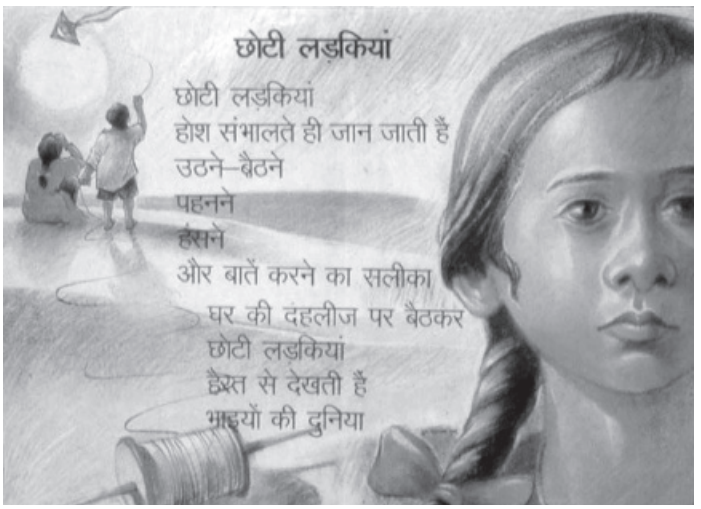

कन्या भ्रूण का पता करने की खर्चीली, गैरकानूनी, निजी चिकित्सा सुविधाओं की मदद लेते हुए जन्म से पहले ही गर्भपात करवा कर उनके घरों मे इतने बड़े पैमाने पर बच्चियों का ऐसा सफाया हो गया है कि अब पंजाब या हरियाणा सरीखे राज्यों में नवरात्रि में कन्या पूजन

के लिए आठ कन्याएं इकट्ठा करना भी मुश्किल हो चला है।

यूं अनचाही मानते हुए भी कन्या को पूजने की दोहरी मानसिकता हमारे यहां हर जाति धर्म के लोगों के बीच मौजूद है। बढ़ती शिक्षा दर और परिवार तथा माता पिता का सहारा बनती जा रही कमासुत लड़कियों की तादाद में भारी बढ़ोत्तरी के बावजूद बच्ची का जन्म परिवारों में अनचाहा ही है। परिवार में नवजात के आने की खबर मिलते ही परिवार जनों और पड़ोसियों से लेकर दाई और बधावा गाने वाले किन्नर तक सभी अपनी फीस या नेग इस आधार पर वसूल करते हैं कि लड़का हुआ या लड़की? लड़का हुआ कहते ही उल्लास छा जाता है। दाई किन्नर भरपूर नेग मांगने लगते हैं और पड़ोसी पार्टी। पर बेटी के आगमन की खबर पाने पर एक सकपकाई करुणामय प्रतिक्रिया होती है: चलो जी जान बच गई, कोई नहीं जी, चलो जो ऊपर वाला भेज दे। कोई न कोई यह भी कह देता है कि हाय घर पर डिक्री आ गई बेचारों के। तीसरी-चौथी बेटी हुई तो रोना धोना और प्रसूता की कोख को कोसना भी होने लगता है।

बच्चियों की लगातार घटती आबादी इस बात का भी डरावना प्रमाण है कि हमारे यहां कानून का डर खत्म होता जा रहा है। आधी आबादी को गरिमा से जीने का हक़ देने के लिए बने, भ्रूण हत्या या दहेज या यौन उत्पीड़न अथवा वेश्यावृति के निषेध विषयक सुधारवादी कानून अपने यहां आज भी एक किताबी कवायद ही है। अगर हमारे राज समाज में पर्याप्त आदर्शवादिता होती तो शायद सुधारवादी कानूनों का फायदा उठाकर हमारे शिक्षा संस्थान और महिला आरक्षण से लैस पंचायतें महिलाओं के महत्व को एक प्रखर राष्ट्रीय सच्चाई की शक्ल दे सकते थे। लेकिन जहां जान ही नहीं वहां प्रखरता कैसी?

हमारी शिक्षा और पंचायती राज इकाइयों में (आरक्षण के बावजूद) जान नहीं, यह बात आपको एक उलटबांसी लग सकती है। लेकिन सच तो यह है कि हमारे राज और समाज में ताकत का असली स्रोत आज भी जाति और निजी कानूनों पर टिकी वे संस्थाएं हैं जिनकी कमान पुरुषों के हाथ में है। उनसे निकले फतवों का वज़न हमारे लोकतांत्रिक संविधान, कानून और निर्वाचित पंचायत पर आज भी भारी साबित होता रहता है। स्कूल से संसद तक भले ही नारी सशक्तिकरण पर सैकड़ों सुधारवादी बहसें सुनी जाती रहें, 8 मार्च को नारेबाज़ी जुलूस निकलें, लेकिन स्टाफ़ रूम, घरों, चायखानों या टीवी के रियालिटी शोज़ में झांकने पर हमारी सीधी मुलाकात होती है पुराने ठिकानेदारों, सामंतों और जागीरदारों की मानसिकता से। इन नए सामंतों को आज डबल रोल मिल गया है: एक तरफ नए और युवा शाइनिंग इंडिया की चमक बनाए रखना, और दूसरी तरफ यह सुनिश्चित करना कि पुराने अजर अमर सामाजिकता वाले हिंदुस्तान की परंपराओं को भी खरोंच गहरी न लगे। लिहाज़ा वे अपने क्षेत्र में धर्म, गोत्र आधारित खाप पंचायतों और मुल्लाओं के हुक्म से प्रेम विवाह को दंडित करना या कालेज की लड़कियों के लिए जींस पहनने पर पाबंदी लगाना भी स्वीकार करते हैं और अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर स्त्रीशक्ति का गुणगान करते हुए महिला थानों का उद्घाटन कर महिलाओं को साइकिलें, मशीनें बांटते फोटो खिंचाते भी दिखते हैं।

टीवी फुटेज गवाह है कि खुद त्रस्त महिलाएं जब न्याय खोजती हैं तो उनको इन तथाकथित सशक्तिकृत स्कूलों, पंचायतों या महिला थानों में कोई आशा की किरण नहीं दिखाई देती। उनको तो जान और आबरू बचाने को, जो परम भ्रष्ट होते हुए भी उनकी नज़र में सर्वसत्तावान चक्रवर्ती हैं, ऐसे नेताओं के सरे आम पैर पकड़कर उनसे न्याय मांगना ही अधिक आश्वस्तकारक लगता है। पर क्या शिखर नायकों के निजी हस्तक्षेप के भरोसे अपने ही परिवार द्वारा डाक्टरी मदद से देश भर में मारी जा रही बेज़ुबान लड़कियों को बचाया जा सकता है? मदर टेरेसा ने एक बार कहा भी था कि अगर कुदरती रक्षक ही बच्चे को नहीं बचाना चाहते तब तो उसे कोई नहीं बचा सकता। क्या समाज को अपनी बेटियों की बाघों जितनी फ़िक्र भी नहीं होनी चाहिए?

सांझी

पवन करण

समय ढलती सांझ का है
लड़कियां सांझी खेल रही है
रच रही हैं उसे दीवार पर

एक अभी हाल में उसकी
आंखें बनाकर हटी है
दूसरी ने उसके ओंठ बनाए हैं

तीसरी उसके माथे पर
बिन्दिया रख रही है
चौथी उसके गले में
माला पहनाने के लिए तैयार है

अभी उन्हीं में से कोई उसके भीतर
सूरज बनाएगी कोई चन्दा
कोई पेड़ बनाएगी कोई चिड़िया
उसमें लिखे जाएंगे एक-दूसरे के नाम
उस पर चिपकाए जाएंगे
मिट्टी के बतासे
सांझी खेलती लड़कियां
देखते ही बनती हैं इस समय

इस समय
इनके घरों से आती
इन्हें लगातार पुकारती
आवाज़ों को कोई समझाए
कोई समझाए उन्हें
सांझी सिर्फ़ खेल नहीं

कोई उनसे कहे कि वे आएं
और पूजा के बाद नाचतीं गातीं
चने मुरमुरे बांटतीं
लड़कियों की खुशी में झांककर देखें

देखें कि इन्होंने जो गोबर से
सांझी की आंखें बनाई हैं
उन आंखों में कितने सपने भरे हैं
कितने गुलाबी हैं
गोबर से बने सांझी के होंठ

गोबर से बनी बिंदिया
कैसी चमक रही है
कितनी खुशबूदार है
गोबर के फूलों की माला
कितना लकदक है गोबर का पेड़
गोबर की चिड़िया भर रही है
उड़ान कितनी ऊंची

कि कितने मीठे हैं
सांझी की देह पर जड़े
मिट्टी के बतासे

पवन करण *हिन्दी साहित्य के कवि हैं।*

लेख

भरतपुर की ये किशोरियां अब पढ़ना-लिखना चाहती हैं।

बेड़ियों को तोड़ती किशोरियां

जुही

हमारे देश को आज़ाद हुए छः दशक हो चुके हैं। समाज में रीति-रिवाजों के नाम पर, धर्म की आड़ में स्त्री-पुरुष, बेटी-बेटे के बीच फ़र्क़ व असमानताएं आज भी विद्यमान हैं। हालात बेहतर हुए हैं- आगे भी होंगे, इसी विश्वास के साथ डटकर मुकाबला कर रही हैं हमारी युवा किशोरियां। समाज के हाशिए पर खड़ी गरीब, पिछड़े वर्गों की ये सशक्त सबलाएं अपनी आज़ादी की ओर क़दम बढ़ा रही हैं। तिरुपुर की सुमंगलियां, भरतपुर के यौन कर्मियों की बेटियां और सतारा की नाकुसाएं अपने छोटे-छोटे रोज़मर्रा के संघर्षों से हमें विस्मित कर रही हैं।

बदलाव की लहर

जेठ की तपती दोपहरी, धूल भरी कच्ची सड़कें, यहां-वहां छितरे कीकर-खजूर के पेड़ों के पास गुज़रते ट्रक की रफ्तार धीमी हो जाती है और चालक ध्यान से दाएं-बाएं देखने लगता है। तभी दुपट्टा ओढ़े एक युवती धूल के बीच से निकलती है और कुछ ही पल में ओझल हो जाती है। भरतपुर की तहसीलों के बीच इस सड़क पर दिखाई देने वाली जवान युवती आने-जाने वाले ट्रक रोक देती है। चालक जानते हैं कि पंद्रह-सोलह वर्ष की, चमकीली त्वचा व हल्के रंग की आंखों वाली बेड़िया, नट, कंजर, बवारिया, बजगर आदि जातियों की किशोरियां कुछ ही रुपयों के बदले उनकी हो जाती हैं। कच्ची उम्र की इन किशोरियों को उनके मां-बाप शहर और आस-पास के चकलों में थोड़े से पैसों के बदले जिस्मफ़रोशी के लिए दलालों के साथ भेज देते हैं।

पर आज माहौल कुछ और ही है। अब गांव की ये किशोरियां अपने काम से काम रखती हैं। घरों के आंगन में कपड़ें धोतीं, खाना पकाती, मवेशी नहलाती या खेलती किशोरियां एक नई दुनिया का एहसास दिलाती हैं।

गांववाले बताते हैं, "अब हम अपनी लड़कियों को पढ़ाते-लिखाते हैं। जब वे अच्छे काम के ज़रिये पैसे कमा सकती हैं तो उन्हें वेश्यावृति में क्यों भेजा जाए?"

आंखों में कितने सपने हैं।

इन गांवों में शिक्षा की भूख स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। लगभग हर दीवार पर बच्चों को शिक्षित करने के महत्व पर नारे व संदेश लिखे हैं। साफ-सुथरे नीले कपड़ों में सुबह-सवेरे अनेक किशोरियां स्कूल जाती दिखाई पड़ती हैं, पैदल, साइकिल या जुग्गड़ गाड़ियों पर।

कुछ युवतियों से बात करने का मौका भी मिला। काफ़ी की मां-नानी यौनकर्मी रह चुकी हैं। पर किशोरियां इस काम को करने से साफ़ इंकार कर देती हैं। वे डाक्टरी पढ़ना चाहती हैं, शहरों में जाकर अच्छी नौकरी करने का इरादा रखती हैं। गांव के बुजुर्ग बताते हैं कि उन्नीसवीं सदी मे जब कबीले एक जगह बसने लगे तभी से उनकी कलाविद किशोरियों को नवाब-राजा अपने हरम में रखने लगे। नवाबी ठाट-बाट के खत्म होते-होते जिस्मफ़रोशी पेट भरने का ज़रिया बन गया। बेटी के पैदा होने पर यह काम परिवार चलाने के लिए उसकी नियति बन जाता था। घर के मर्द कोई काम नहीं करते थे। वे आराम से बैठकर खाते-पीते थे। धीरे-धीरे दूसरी जाति की लड़कियां ब्याह के लिए इन कबीलों में आनी बंद हो गई क्योंकि समाज इन्हें हिकारत की नज़र से देखता था। बेटियों को अपने भाई की शादी के लिए दूसरी जाति की दुल्हनें खरीदनी पड़ती थीं और कमाई का साधन सिर्फ वेश्यावृति था। इस चक्रव्यूह में पिसती औरतों के पास कोई विकल्प नहीं थे।

पर अब ऐसा नहीं होता। अब यहां की किशोरियों का जीवन सुधर गया है। भरतपुर की यौन कर्मियों की ये बेटियां अब पुराने रिवाजों को अपने पैरों की बेड़ियां बनने नहीं देतीं। वे अपने सपनों को पूरा करने के लिए जी-तोड़ प्रयास कर रही हैं। अब बस ज़रूरत हैं तो कुछ सरकारी प्रयासों की। किशोरियां चाहती हैं कि उन्हें शिक्षा व नौकरियों में आरक्षण मिलें, 'हम घुमन्तु जातियों के लोग हैं और हमारे कल्याण के लिए सरकार को आगे आना ही होगा।'

नाकुसा- यही तो मेरा नाम है

वह तेरह वर्ष पहले इस दुनिया में आई थी। जब भी कोई उसका नाम पुकारता है उसके अंदर कुछ मर सा जाता है। उसका नाम रखा गया था- नाकुसा-जिसका मराठी में अर्थ है- अनचाही। सतारा ज़िले के कमाठी गांव की यह लड़की अपनी मां से सवाल करती है, 'जब अपने

हर हाल में खुश

लोग मुझे चाहते ही नहीं थे तो पैदा होते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला?'

यहां कई बेटियां अपने माता-पिता से यही सवाल पूछती हैं। महाराष्ट्र के स्वास्थ्य विभाग के सर्वेक्षण के अनुसार इस ज़िले में लगभग तीन सौ पचास लड़कियों का नाम नाकुशी या नाकुसा रखा जाता है। सामाजिक कार्यकर्ताओं का मानना है कि जब माता-पिता ही अपनी बच्ची का नाम नाकुसा रख, उसे अनचाहे होने का एहसास कराते हैं तो लड़की की मानसिकता पर बुरा असर पड़ता है। वह अपमान और हीन भावना से ग्रस्त होकर जीती है और शादी के बाद बेटी पैदा करने से डरती है।

नया नाम, नई पहचान

देश के अन्य हिस्सों की तरह यहां भी लोग बेटे की चाह रखते हैं। दम्पत्ति बेटा पैदा होने तक प्रयास करते रहते हैं और इस दौरान पैदा होने वाली बच्चियों का नाम नाकुसा रख दिया जाता है। यही यहां का रिवाज है।

पर हैरानी की बात यह है कि इस इलाके में पैदा होने वाली ये किशोरियां दुखी, अपमानित या घबराई नहीं होतीं। वे अपने दोस्तों, शिक्षकों और परिवार वालों के बीच बड़े स्नेह और देखभाल के साथ बड़ी हो रही हैं। बाहरी दुनिया वालों के समक्ष ये किशोरियां उम्मीद और जीवन में कुछ बड़ा करने का हौसला रखती हैं। जैसा कि एक नाकुसा ने बताया, जब मैं पैदा हुई तो मेरे बाबा, जो एक पोता चाहते थे दुखी हो गए। उन्होंने रिवाज के अनुसार मेरा नाम नाकुसा रख दिया। पर मेरे माता-पिता ने मुझे बड़े लाड़ प्यार से बड़ा किया। वे मुझे खूब पढ़ा-लिखा रहे हैं। मेरी सभी मांगे पूरी करते हैं। पूछने पर कि क्या उसके नाम की वजह से उसे शर्मिंदगी होती है वह बोली, 'थोड़ा बुरा लगता है, पर कोई भी मुझे चिढ़ाता नहीं है। मैं अपने माता-पिता से अपना नाम बदलने के लिए कह रही हूं पर यह हो नहीं पाया है।'

इस राज्य के स्वास्थ्य विभाग ने भी नाकुसा नाम की लड़कियों के परिवारों से उनका पुनः नामकरण करने की गुज़ारिश की है। एक अधिकारी ने बताया कि, 'हम अपनी बच्चियों को अब और शर्मिंदा नहीं करना चाहते। हम चाहते है यहां एक भी नाकुसा नाम की लड़की न रहे।'

परिवारों को समझाया जा रहा है कि एक प्रथा के चलते अपने घर की बेटियों के साथ नाइंसाफ़ी न करें। कई लोगों ने अपनी बेटी का नाम बदलने की प्रक्रिया शुरू भी कर दी है। एक लड़की का नाम ऐश्वर्या और दूसरी का नाम प्रवीणा रखा गया है। पर लोग अभी भी उनका पुराना नाम चलाते हैं क्योंकि वह उनकी जुबान पर चढ़ा है। पर ये बच्चियां लोगों को टोक देती हैं। जल्द ही ये बदलाव रंग लाएगा और नाकुसा नाम गुम हो जाएगा।

सुमंगली-अब अपनी शर्तों पर

इसे विडम्बना ही कहिए कि गरीब परिवार अपनी युवा बेटियों को तमिलनाडु की कताई मिलों में काम करने के लिए भेजते हैं। उनका उद्देश्य होता है कि ये लड़कियां

मिल में सिलाई करती हुई किशोरी।

अपने ब्याह के लिए कुछ पैसा इकट्ठा कर लें। पर ये किशोरियां इस काम में शोषण और हिंसा का शिकार होती हैं। काफी काम के बोझ व बीमारी से ग्रस्त होकर मर भी जाती हैं। इस स्कीम का नाम है सुमंगली- एक खुशहाल शादीशुदा स्त्री को तमिल भाषा में सुमंगली कहा जाता है।

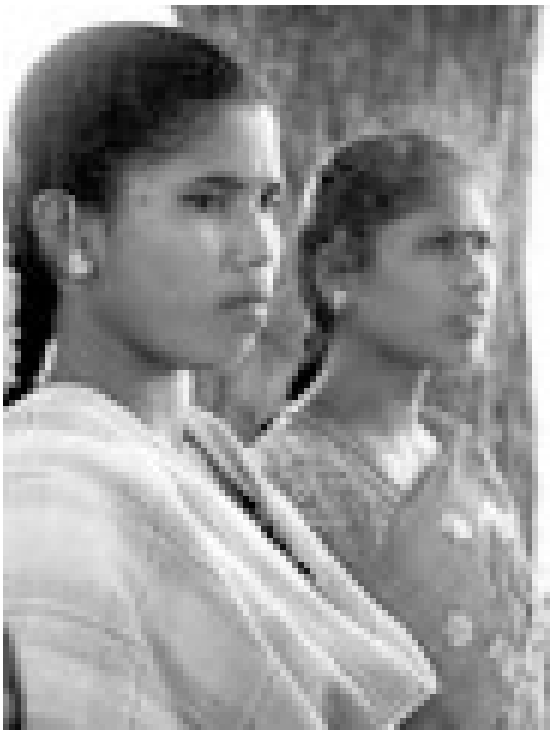

अब काम अपने अनुसार करेंगे।

तमिलनाडु में 13 से 18 वर्ष की उम्र की अविवाहित किशोरियों को पास की कताई मिलों में जबरन काम के लिए भेजा जाता है। तीन साल के अनुबंध के बाद लड़की को तीस से लेकर पचास हज़ार तक रुपये मिलते हैं जिससे परिवार उसकी शादी कर देता है। इस पैसे को कृपादान कहा जाता है। पर सच्चाई तो यह है कि तीन साल पूरे होने से पहले ही मिल मालिक किसी न किसी बहाने से लड़की को काम से निकाल देते हैं जिससे पैसा न देना पड़े।

तिरुपुर और कोयमबटूर में स्थित मिलों को हमेशा सस्ते श्रमिकों की ज़रूरत रहती है। हज़ार-दो हज़ार रुपये के बदले दलाल आस-पास के गरीब गांवों से ऐसे परिवार चुनते हैं जहां विवाह योग्य लड़कियां हों। ये लड़कियां तीन वर्ष मिल में रहकर दिन-रात काम करती हैं। कभी-कभार ही उन्हें अपने माता-पिता से मिलने की इजाज़त मिलती है। एक कमरे में दस से बारह किशोरियां रहती है। उनके रहने खाने-पीने, शौच आदि के कोई विशेष प्रबंध नहीं किए जाते। कड़ी मेहनत व कुपोषण से बच्चियां दमे, खांसी, खून की कमी, टीबी, महावारी अनियमितता जैसी बीमारियों का शिकार हो जाती हैं। इसके अलावा यौन शोषण और पुरुष कर्मचारियों द्वारा गाली-गलौज सहना भी एक आम बात है।

हिंसा, शोषण और नाइंसाफ़ी के इस ताने-बाने को तोड़ने के लिए कुछ गांवों की किशोरियां सामने आई हैं। उन्होंने अब इस सुमंगली स्कीम में भागीदारी करने से साफ़ इंकार कर दिया है। अगर मजबूरीवश उन्हें काम करना भी पड़े तो वे न्यूनतम मज़दूरी की मांग रखती हैं। साथ ही आठ घंटे काम और साप्ताहिक अवकाश की भी शर्त रखती हैं।

कुछ किशोरियों और उनके परिवारों ने एकजुट होकर गांव में दलालों का आना-जाना बंद कर दिया है। वे मिल मालिकों से सीधे बात करके सभी नियम तय करती हैं। हालांकि इलाके में कोई यूनियन अभी नहीं बने है फिर भी इन लड़कियों का दृढ़ निश्चय और एकजुटता देखते ही बनती है।

"हमें पेट भरने के लिए काम तो करना ही है पर सुमंगली स्कीम के झांसे में आकर हमें जान गंवाना और बीमार होना मंज़ूर नहीं है। अगर ज़िन्दा रहेंगे तभी तो सुमंगली बनेंगे। हमें मरने के नहीं, जीने के रास्ते खोजने हैं।" युवा किशोरी की ये आवाज़ दूर-दूर तक सुनाई देती है और उम्मीद की लहर सामने नज़र आती है।

जुही जैन, *नारीवादी लेखिका व कार्यकर्ता हैं। वह हम सबला का सम्पादन भी करती हैं।*

आमने-सामने

हौसलों की उड़ान

सादिया अज़ीम

आजकल सोलह साल की सुनीता मुर्मू की बड़ी तारीफ़ हो रही है। इस युवती ने बंगाल के सबसे पिछड़े ज़िले बीरभूम के मुहम्मद बाज़ार पुलिस थाने में अपने समुदाय के दबंग अपराधियों के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज कराने की हिम्मत दिखाई। यही नहीं उसने उनको अपने यौन उत्पीड़न, हिंसा और सामाजिक बहिष्कार के लिए सज़ा भी दिलवाई।

फ़ोटो: सादिया अज़ीम/विमेंस फ़ीचर सर्विस

एक समय था जब सुनीता आम लड़कियों की तरह दिहाड़ी मज़दूरी करती थी और अपने माता-पिता के साथ पुरुष-प्रधान समाज के दबाव में रहती थी। फिर उसकी किस्मत बदली। उसे पास के गांव के एक गैर आदिवासी लड़के से प्यार हो गया। गांव की आदिवासी पंचायत को इस बारे में पता चला और सुनीता की परेशानी शुरू हो गई।

उसे इस जुर्रत के लिए आदिवासी पंचायत ने सज़ा सुनाई- उसे निर्वस्त्र करके पूरे गांव में घुमाया गया। जब सुनीता को नग्न अवस्था में गांव में घुमाया जा रहा था तब तमाम लोग ताने कस रहे थे। कुछ ने उसकी तस्वीरें और वीडियो भी बनाए और मोबाइल के ज़रिए पूरे गांववासियों को भेजे जिससे कोई अन्य लड़की सुनीता का 'जुर्म' दोहराने की हिम्मत न कर सके।

गांव में कोई भी सुनीता की मदद के लिए आगे नहीं आया। माता-पिता मजबूर थे और पुलिस वाले भी इस अन्याय को रोकने नहीं पहुंचे। दो घंटों और आठ किलोमीटर की इस हिंसा के बाद सुनीता को एक कोने में फेंक दिया गया। आदिवासी पंचायत का विरोध गांव की निर्वाचित पंचायत ने भी नहीं किया। किसी तरह खुद को घसीटकर सुनीता अपने घर पहुंची जहां उसके पड़ोसियों ने उसका जीना दूभर कर दिया।

इस वारदात में समुदाय के नेता भी शामिल थे लिहाज़ा सभी सबूत नष्ट कर दिए गए थे। दो माह तक सुनीता अपनी झोपड़ी से बाहर नहीं निकली। परिवार और रिश्तेदारों ने उसे समझाया कि वह सब कुछ भूलकर आगे बढ़े पर सुनीता ने अपने साथ हुए अन्याय पर आवाज़ उठाने का निश्चय कर लिया था। उसके माता-पिता ने उसे बहुत समझाने की कोशिश की पर सुनीता ने कहा "मैं इस घटना को कैसे भूल सकती हूं। मैं इस दर्द और अपमान के साथ जी रही हूं। अब मैं औरतों के साथ परम्परा के नाम पर होने वाले सभी जुर्मों के ख़िलाफ़ लडूंगी।"

दो महीने बाद जब पुलिस मामले की छानबीन करने उसके घर आई तब सुनीता ने अकेले ही पूरी घटना का ब्योरा पुलिस को दिया और औपचारिक तौर पर शिकायत दर्ज कराई। सबूत के नाम पर उसके पास केवल वहीं

एमएमएस था जो लोगों के फ़ोन पर भेजा गया था। गवाही देने को गांव एक एक भी आदमी तैयार नहीं था- कुछ अपराधियों की ताकत से डरते थे- कुछ मानते थे कि वे अपनी परम्परा की सुरक्षा के लिए खड़े हैं।

बीरभूम में सुनीता की मां और बहन

फ़ोटोः सादिया अज़ीम/विमेंस फ़ीचर सर्विस

पर अब सुनीता रुकने वाली नहीं थी। केस की जांच-पड़ताल करने वाले रामपुर हाट के एक अफ़सर बताते हैं, "किसी युवती में इतना आत्म-विश्वास हमने पहली बार देखा था। हमें लगा था वह घबराई होगी और हमारे साथ सहयोग नहीं करेगी। ऐसे मामलों में अक्सर पीड़ित अपराधी को पहचानने से इंकार कर देते हैं। पर सुनीता इन सबको जानती थी। यही आत्मविश्वास उसे समुदाय का सहयोग भी दिला सकता था।"

शिकायत दर्ज होने के दो रोज़ बाद ही मुख्य छः अभियुक्तों को गिरफ़्तार कर लिया गया। इन युवा अपराधियों ने ग्रामवासियों को भड़काया और फिर उन पर खामोश रहने के लिए दबाव भी डाला था।

समुदाय से आने वाली परेशानियों से बचाने के लिए सुनीता को रामपुरहाट के एक सरकारी आश्रयघर 'पुष्पराग' भेज दिया गया। अब वह वहीं रहती है। अपना भविष्य सुधारने के लिए वह सिलाई-कढ़ाई का काम भी सीख रही है। ज़िला प्रशासन ने उसके लिए एक बचत खाता भी खोल दिया है।

प्रशासन ने सुनीता का नाम राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार के लिए भेजा। इलाके के ज़िला मजिस्ट्रेट सौमित्र मोहन बताते हैं- "यह एक अनोखा मामला था क्योंकि सुनीता ने अपनी लड़ाई अकेले ही लड़ी। फिर यह लड़ाई एक संगठित जुर्म, पुराने, दकियानूसी मूल्यों और अवैध पंचायत सत्ता के ख़िलाफ़ थी।"

आज सुनीता का नाम उन छब्बीस युवाओं में शामिल है जिन्हें राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार से सम्मानित किया जा रहा है।

हालांकि सुनीता ने अपने जीवन पर नियंत्रण हासिल कर लिया है पर फिर भी वह एक अकेला और बहिष्कृत जीवन जीने को बाध्य है। वह वापस अपने गांव नहीं जा पाई है। उसके परिवार वाले अभी भी उससे बात करने से इंकार करते हैं। अपराधी खुलेआम घूम रहे हैं और यह उसकी ज़िंदगी के लिए खतरनाक हो सकता है। गांव के अधिकांश लोग दिहाड़ी मज़दूर हैं और उनकी रोजी-रोटी सत्ताधारी पक्षों पर आश्रित है। पर सुनीता को इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह कहती है, "मैं वापस नहीं गई हूं पर इसका अर्थ यह नहीं कि मैंने कुछ गलत किया है। मैं अपनी पढ़ाई पूरी करूंगी और उन लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करूंगी जो मेरी तरह अकेले और निराश्रय है।"

सौभाग्य से सुनीता का जीवन इलाके की अन्य किशोरियों को प्रेरित कर रहा है। एक स्थानीय कन्या विद्यालय की प्रधान अध्यापिका कहती हैं, "मैं अपने स्कूल की लड़कियों को बताती हूं कि अन्याय सहना अन्याय करने के बराबर ही है। हमें सुनीता से सीखना चाहिए कि समाज में हो रहे अन्याय को चुनौती कैसे दी जाए।"

माहौल अब धीरे-धीरे बदल रहा है। उसके सहयोग में आवाज़ें उठ रही हैं। महिला संगठनों की मांग है कि सुनीता का उसके समुदाय में पुनर्वास किया जाए। ज़िला मजिस्ट्रेट कहते हैं कि "हम अपनी कोशिश जारी रखेगें। फिलहाल सुनीता को अपनी तीन साल की शिक्षा पर ध्यान देना है। इस बीच उसके समुदाय में भी उसकी उपलब्धियों को सराहा जा रहा है। हमारा मानना है कि राष्ट्रीय सम्मान में मिला मेडल, रुपये और राष्ट्रीय पहचान सार्वजनिक रवैयों को बदल कर रख देगी।"

साभारः विमेंस फ़ीचर सर्विस

सादिया अज़ीम, *विमेंस फ़ीचर सर्विस के लिए लिखती हैं।*

अभियान

MUST बोल अभियान

ध्रुव अरोड़ा

लगभग 90 प्रतिशत पुरुषों का मानना है कि "मर्दानगी शारीरिक बल, स्टाइल, तनाव सहने की क्षमता, शारीरिक श्रम, आज़ादी, प्रतिष्ठा, नियंत्रण, अपने देश के गौरव के लिए लड़ने, आत्म संयम, यौन सक्रियता, अपने साथी को यौन संतुष्टि प्रदान करने की क्षमता, पैसा कमाने व संतान पैदा करने की योग्यता, मजलूमों-गरीबों तथा परिवार मुख्यतः औरतों की सुरक्षा करने की क़ाबलियत द्वारा परिभाषित की जाती है।

स्रोतः "नाज" द्वारा मर्दानगी पर किए गए शोध से प्राप्त जानकारी

मर्दानगी को परिभाषित करने वाले इन अति महत्वपूर्ण मानकों को देखते हुए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि अधिकांश पुरुष अपने जीवन का अहम हिस्सा इन उम्मीदों पर खरा उतरने में गवां देते हैं। पर यह परिभाषा हमें कुछ खास सवालों पर सोचने को भी बाध्य कर देती है- उन लोगों का क्या जो मर्दानगी के इस नियत वर्गीकरण में फिट नहीं बैठते? तो फिर कौन से व्यवहार 'मर्दाने' नहीं कहे जाएंगे? क्या हम अलग व्यवहार करने वाले मर्द नहीं हैं?

अगर इन सभी सवालों का जवाब 'न' में है तो फिर ऐसा क्यों है कि कुछ खास किस्मों की मर्दानगी को ही खरा माना जाता है? मर्द बनने की चाह में युवा जिस तनाव-बोझ से गुज़रते हैं वह बिल्कुल मूर्खतापूर्ण है। इस प्रयास में अक्सर हम अपने को मर्दानगी के इन नियत मापदंडों से अलग पाते हैं और खुद को 'नार्मल' बनाने की भरसक कोशिश में लगे रहते हैं।

युवाओं के साथ पिछले तीन वर्ष के अपने काम के दौरान मैं एक सच्चाई से वाकिफ़ हुआ हूं- मर्दानगी को लेकर उनकी सोच इतनी दकियानूसी नहीं है। हम सहज ही मान लेते हैं क यह खुली मानसिकता शिक्षा के कारण है और आज का युवा इन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नहीं है। पर बौखला देने वाली सच्चाई तो यह है कि मर्दानगी के ये

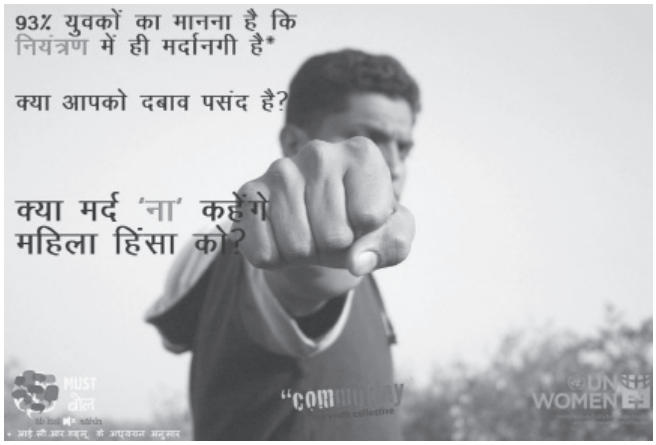

फ़ोटोः MUST बोल अभियान

पूर्वाग्रह इतने अधिक गहरे पैठे हैं कि हम उन्हें अब पूर्वाग्रह भी नहीं मानते- ये तो बस "ऐसे ही होते हैं।"

'MUST बोल अभियान' इन सभी मुद्दों को सम्बोधित करने के लिए युवाओं के साथ एक ऑन-लाइन अभियान से जुड़ा है। फेसबुक पर एक पेज-लेट्स टॉक (आओ बातें करें) के ज़रिए ये युवाओं से सम्पर्क बनाए रखता है। हमारे दिमाग में 'असली मर्द' की परिभाषा इतनी स्पष्ट होती है कि हम किसी दूसरी तरह के 'मर्द' की कल्पना भी नहीं कर पाते। अधिकांश युवा वर्ग इसी असली मर्दानगी को ग्रहण करने की कोशिश में जुटा है क्योंकि उनके हिसाब से यही मर्दानगी उन्हें 'असली' मर्द बनाती है। और यह समस्या लड़के व लड़कियों दोनों में पाई जाती है- लड़कियां

फ़ोटो: MUST बोल अभियान

भी लड़कों को घर का "असली मर्द" बनने के लिए जबरन धकेलती जाती हैं। अफ़सोस यह है कि यह सब एक अच्छी मंशा से किया जाता है पर ये लिंग विभाजित भूमिकांए समाज में हमारे व्यवहार और असमानताओं का आधार बनती हैं।

आम जीवन की सच्चाई तो यह है कि मर्दानगी की इस पारंम्परिक छवि को मिटाने के लिए इस मुद्दों पर युवाओं से बातचीत करना ज़रूरी है जिससे खामोशी से इन रूढ़िवादी मान्यताओं को अंगीकृत करने वाले नैतिक मूल्यों को बढ़ावा न मिले। इसके मायने हैं कि हमारे कल को इस रूढ़िवादिता से आज़ाद करने और एक निश्चित सामाजिक छवि को कायम रखने के सामाजिक दबाव से उबारने में युवाओं की भूमिका अहम है।

युवाओं से बातचीत के दौरान मेरा अनुभव रहा है कि काफी लोग यह मानते हैं कि मर्दानगी का उल्टा होता है ज़नानापन- एक दूसरी पारम्परिक छवि जिसमें 'मर्द' की एक खास पहचान होती है। इसके अलावा वे मानते हैं कि मर्दानगी का अर्थ है मर्द बनना और पुरुष होने के नाते उनको एक खास तरह से जीना व व्यवहार करना आवश्यक है- इससे अलग किसी भी छवि को वे नहीं स्वीकारते। विडम्बना यह है कि मर्दानगी के इन मानको का अनुसरण करने वाले यही युवा इससे त्रस्त भी हैं- उन्हें मर्द बनने के लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है।

मर्दानगी के ये मानक अनेक स्रोतों व तरीकों से हमें सिखाये जाते हैं- मीडिया, फ़िल्म, विज्ञापन, संस्कृति, रिवाज व समाज। एक 'परफेक्ट' मर्द की घिसी पिटी तस्वीर अनगित तरीकों से हमारे सामने पेश की जाती है। हमसे इन उम्मीदों पर पूरा उतरने की अपेक्षा की जाती है। फिर चाहे हम उन विज्ञापनों की बात करें जिनमें दर्शाया जाता है कि कौन सी विशेष ब्रांड के कपड़े हमें एक लड़की के सम्मान की सुरक्षा करने का हौसला देते हैं; अनेकों गोरापन बढ़ाने वाली क्रीमें जो एक विशेष तरह के मर्द की छवि को बढ़ावा देती हैं; या एक परिपूर्ण मर्द की छवि को पुख्ता बनाने वाले सूटिंग के विज्ञापन- सभी हमारी असुरक्षा को बढ़ाते हुए यह संदेश देते हैं कि इन खाकों में सटीक बैठने वाले ही 'असली मर्द' कहलाने का दम रखते हैं। इन पैमानों से बाहर रहने वाले इस सूची में नहीं आते।

फ़ोटो: MUST बोल अभियान

इस समस्या से निजात पाने का एक ही उपाय है- युवा इस रूढ़िवादिता का सामना करें और इस कसौटी पर खरा उतरने की ज़िद छोड़कर रोज़ाना सामने धकेली जाने वाली छवियों को मानने से स्पष्ट इंकार कर दें। तभी ये दुनिया ऐसे युवकों की होगी जहां सबकी अपनी खास अलग पहचान, व्यक्तित्व व मर्दानगी होगी। और इसके लिए बेहद ज़रूरी है कि युवा वर्ग समस्या को पहचाने और आने वाली पीढ़ी होने की ज़िम्मेदारी उठाते हुए आगे बढ़े।

ध्रुव अरोड़ा *MUST बोल अभियान के साथ जुड़े हैं।*
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें
www.mustbol.in

संवाद

युवाओं की ज़िम्मेदारी भी है

पिछले कई वर्षों से जागोरी दिल्ली में पुनर्वास क्षेत्रों— खादर, बवाना व दिल्ली विश्वविद्यालय में युवाओं के साथ काम कर रही है। अपने काम के दौरान जागोरी कार्यकर्ताओं ने यहां युवा समूह तैयार किए हैं जिन्हें शक्ति समूह (किशोरियों के लिए) व दोस्ताना समूह (किशोरों के लिए) के नाम से जाना जाता है। युवाओं को सशक्त बनाने का यह माध्यम उनके विचारों, आकांक्षाओं और उनके मन की बातों को बांटने के लिए एक विशेष मंच भी है। जागोरी से जुड़े कुछ युवाओं के विचार हम आपके साथ बांट रहे हैं।

हमारी युवा पीढ़ी पर न जाने कितने बोझ हैं। कोई कहता है आज का युवा किसी काम का नहीं है। तो किसी को युवा पीढ़ी पर फ़क्र है। पर युवा खुद आखिर क्या चाहते हैं? यह कोई पूछता ही नहीं है?

खैर युवा भी इसमें क्या करे? वो खुद आज दिशाहीन है। बाज़ार की होड़ के पीछे दौड़ती हुई यह पीढ़ी बहुत व्यस्त है। पहले पढ़ाई, फिर नौकरी और पैसा कमाने की दौड़।

युवाओं की कुछ ज़िम्मेदारियां भी हैं। ये युवाओं की ही तो ज़िम्मेदारी है कि वे सोचें कि आखिर ज़िंदगी में इतनी गला काट प्रतियोगिता क्यों है? क्यों सफलता पाने के लिए दूसरों को हराना ज़रूरी होता है? क्यों परीक्षा में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने के लिए समझ नहीं रटना ज़रूरी हो जाता है?

असल में ज़िम्मेदारियों से भागने व प्रतियोगिता की होड़ में शामिल होने के पीछे है बाज़ारवाद। इस व्यवस्था में उत्पादन समाज के उपयोग के लिए नहीं बल्कि मुनाफ़े के लिए किया जाता है। इसलिए तो बाज़ार में सामान की कभी कमी नहीं होती लेकिन दूसरी तरफ लोग भूखे सोते हैं। गरीब और अधिक गरीब होते जाते हैं और अमीर और ज़्यादा अमीर। इसलिए तो मज़दूरों को ओवर टाइम करना पड़ता है ताकि मालिक ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कमाएं। इसलिए तो शिक्षा ज्ञान वर्धन के लिए नहीं बल्कि सिर्फ कौशल सीखने के लिए होती है। ऐसी अवस्था में पैसा और सत्ता ही सबसे महत्वपूर्ण कारक होते हैं। गरीबी और अमीरी के बीच खाई बढ़ती जाती है।

इन सबका अंत करना ज़रूरी है। इसके लिए ज़रूरत है तालमेल की, बातचीत की, फुर्सत से सोचने की। एक ऐसे समाज का निर्माण ज़रूरी है जहां इंसान अर्थव्यवस्था को चलाते हों न को इसके लिए आगे आना होगा। उन्हें सोचना पड़ेगा, दूसरों से बातचीत करनी पड़ेगी, दूसरों के दर्द को समझना पड़ेगा। युवा को आपस में सहयोग करने की भी ज़रूरत है। जब युवा अपनी इस ज़िम्मेदारी को उठाने के लिए सक्षम हो जाएंगे तभी समाज में प्रगति, समानता और सहयोग का माहौल बनेगा।

***मधु** जागोरी की कार्यकर्ता हैं।*

मैंने जब से होश संभाला तब से कई तरह की अच्छी-अच्छी बातें सीखी हैं जैसे पढ़ना, लिखना, खेलना कूदना, घूमना आदि। आज भी मुझे पढ़ना लिखना बहुत अच्छा लगता है। पर मेरे घर में कुछ परेशानी की वजह से मेरी पढ़ाई अधूरी रह गई। लेकिन फिर भी मैं इतना तो पढ़-लिख लेती हूं कि अपने घर के दो बच्चों को पढ़ा सकूं।

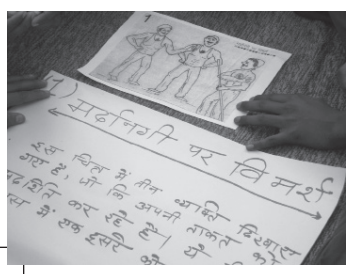

हमने दोस्ताना समूह के साथ अपना काफी समय बरबाद होने से बचाया है। जागोरी की दीदी ने युवाओं का मार्गदर्शन करते हुए मदनपुर खादर में सुरक्षा व्यवस्था के बारे में विचार-विमर्श किया। युवा समूह चाहता है कि हमारी कालोनी एक सुरक्षित स्थान बने जिससे महिलाएं बिना किसी डर के कभी भी घर से बाहर आ-जा सकें। हमारे युवा समूह ने मिलकर पृथ्वी दिवस पर पेड़-पौधे लगाए तथा हेल्थ कैंप में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। हमने रेडियों कार्यक्रम व नुक्कड़ नाटक के माध्यम से अपनी बात लोगों तक पहुंचाने की भी कोशिश की।

अपने शक्ति समूह में मैं खुद को आत्मनिर्भर महसूस करती हूं। मैं अपनी बात को बेझिझक रखती हूं जिससे मेरे दिल को तसल्ली मिलती है। इससे मुझमें आत्मविश्वास बढ़ा है। अब मैं हर कठिनाई या परेशानी का सामना कर सकती हूं। अब मैं अपने आपको और मज़बूत बनाऊंगी और अपने जीवन को संवारुंगी।

मैं जागोरी शक्ति समूह से तीन साल से जुड़ी हूं। पहले ज़माने में औरतों को घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता था। उनसे घर में ही काम कराया जाता था और पुरुष बाहर काम पर जाया करते थे। लेकिन अब महिलाएं घर से बाहर निकलकर खुद अपने पैंरों पर खड़ी होना चाहती हैं और घर व बाहर का काम बखूबी करती हैं।

पहले बेटियों को नहीं पढ़ाया जाता था क्योंकि मां-बाप कहते थे कि लड़की पढ़कर क्या करेगी। लेकिन आज ऐसा नहीं है। आज हर कोई अपनी बेटियों को पढ़ाता है क्योंकि जो लड़के कर सकते है वो लड़कियां भी कर सकती हैं।

मैं युवाओं के साथ मिलकर अनेक प्रकार के कार्यक्रम किए और मीटिंगों में शामिल हुआ। इससे मुझे स्वास्थ्य पर काफी जानकारी मिली।

मैंने अपने शरीर में कुछ परिवर्तन देखे और अपने दोस्तों से उन्हें बांटा। अब मैं अपने अधिकारों के बारे में भी जानने लगा हूं। मैं खेलों में रूचि रखता हूं लेकिन कभी सोचा नहीं था कि मैं एक एथलीट भी हो सकता हूं। पर अब इसके लिए खूब मेहनत कर रहा हूं।

मैं पिछले 3-4 साल से दोस्ताना समूह से जुड़ा हुआ हूं और शायद आने वाले समय में भी जुड़ा रहूंगा। मैंने इन वर्षों में जो भी अनुभव किया उसमें अपनी ज़िंदगी में उतारा है।

पहले मैं अपने जीवन को लेकर चिंतित था लेकिन अब मुझे काफी कुछ समझ में आ गया है। अब मैं ज़्यादा से ज़्यादा समय अपने परिवार के साथ व्यतीत करता हूं। मैंने युवाओं के साथ मिलकर काफी कुछ सीखा तथा जो भी सीखा उसे अपने घर वालों और पड़ोसियों को भी बताया। मैं अब महिलाओं व लड़कियों की मदद करने में कभी भी पीछे नहीं रहता हूं। मैंने जो कुछ सीखा व अनुभव किया है उसे मैं बाहरी देशों में जाकर उन युवाओं के साथ बांटूंगा जो इन जानकारियों से वंचित हैं।

समूह से जुड़ा तो मुझे काफ़ी नई बातें सीखने को मिलीं। यहां मैं अपनी उम्र के युवकों से मिला तथा अपना अनुभव उन लोगों के साथ बांटा। पहले तो मुझे किसी प्रकार की ज़िम्मेदारी का अहसास नहीं था। पर अब मुझे अपनी ज़िम्मेदारियों का अहसास हुआ है और इस नए बदलाव से मैं काफ़ी खुश हूं।

ये विचार शक्ति समूह व दोस्ताना समूह से जुड़े युवाओं के हैं।

फ़ोटोः जागोरी

सूरज सी होती हैं बेटियां

कमला भसीन

दो साल पहले हमारी युवा साथी रोहिणी की अकाल मृत्यु हो गई। उसके माता-पिता ने उसके काम और आदर्शों को आगे ले जाने के लिए 'रोहिणी गाडियोक फाउंडेशन' की स्थापना की है। इस फाउंडेशन के स्थापना दिवस पर नारीवादी कार्यकर्ता, कमला भसीन के भाषण के कुछ अंश हम आपके साथ बांट रहे हैं।

कमला जी के ये शब्द ऐसी दो युवा बेटियों को उनकी श्रद्धांजलि है जिन्होंने अपने छोटे से जीवनकाल में कुछ प्रेरणादायक काम किए हैं। रोहिणी और मीत्तो (कमला जी की होनहार बेटी जो कुछ वर्षों पहले हमारा साथ छोड़ गई) के जीवन आज की युवा पीढ़ी के लिए एक प्रेरक मिसाल हैं।

"दो गज़ब की बेटियां। कितना कुछ मिलता है उनका। एक हिन्दू कॉलेज से स्नातक तो दूसरी सेंट स्टीफ़ेंस से। दोनों समाज की नाइंसाफ़ी और गैर बराबरी से बेहद नाराज़-परेशान।

दोनों बेकरार दुनिया बदलने को। दोनों में काम करने की जल्दी। कुछ कर गुज़रने की लगन और जुनून। दोनों ही ने मानव अधिकार, सांप्रदायिक सद्भाव और समानता पर काम किया।

जैसा कि आपने सुना ही होगा उन्नीस वर्ष की रोहिणी हर साल छुट्टियों में किसी न किसी गैर सरकारी संगठन के साथ काम करने पहुंच जाती थी। कभी उड़ीसा के ठेठ देहाती क्षेत्र में *ग्राम विकास* से जुड़े आदिवासियों के बीच। तो कभी राजस्थान के पिछड़े इलाकों में उरमूल के साथ काम करने और सीखने। ज़मीनी सच्चाइयों को समझने और उनके साथ जूझने कभी झारखंड तो कभी अजमेर। और ये सब यात्राएं पढ़ाई के दौरान थीं।

फिर हमारे साथ *जागोरी* में तीन साल तक काम किया। वहां हम खूब मिलते थे, इकट्ठा उठते-बैठते थे, गाते थे।

रोहिणी की तेज़ रफ़्तार वाली यात्रा चलती रही। उसे बहुत जल्दी थी- इतना काम जो करना था। रोहिणी की अम्मा हैरान थी- इतने आदर्श और जज़्बात इस लड़की में आए कहां से?

दोस्तों, रोहिणी और मीत्तों को याद करते हुए हमें एक चीज़ ज़रूर याद रखनी चाहिए और वो है ज़िन्दगी और जीने का जुनून। रोहिणी और मीत्तो तुम्हारे अचानक चले जाने से हमें समझ आया कि जीवन एक तोहफ़ा है। हम इसे यूं ही ज़ाया नहीं कर सकते। हम खुशनसीब हैं कि हमें इतने अद्भुत, जोशीले बच्चों के माता-पिता होने का सम्मान और खुशी मिली है। हम यह भी बखूबी समझ गए हैं कि जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां जीवन है वहां मृत्यु भी होगी। इस सच को हमें स्वीकारना ही होगा।

यह देश जहां बेटियों को बड़ी तादाद में मारा जा रहा है, यह शहर जहां दक्षिण दिल्ली की कुछ कॉलोनियों में 1000 लड़कों पर 900 से भी कम लड़कियां रह गई हैं, आइए हम सब बेटियों के चमकते रूप, उनके हुनर के बारे में बात करें, उसका जश्न मनाएं। मैंने तमाम बेटियों के नाम ये कविता लिखी है, इस कविता की प्रेरणा रोहिणी और मीत्तो हैं-

हवाओं सी होती हैं बेटियां
उन्हें चलने में मज़ा आता है।
उन्हें मंजूर नहीं बेवजह रोका जाना।

परिंदों सी होती हैं बेटियां
उन्हें उड़ने में मज़ा आता है
उन्हें मंजूर नहीं परों का काटा जाना।

पहाड़ों सी होती हैं बेटियां
उन्हें सिर उठा जीने में मज़ा आता है
उन्हें मंजूर नहीं सिर झुका कर जीना।

सूरज सी होती हैं बेटियां
उन्हें चमकने में मज़ा आता है
उन्हें मंजूर नहीं हर दम बादलों से ढका होना।

संवाद

विनाश की ओर अग्रसर

ईता महरोत्रा

"पास द जे" दिल्ली विश्वविद्यालय की भीड़-भाड़ वाली सड़कों पर ये शब्द दिन में न जाने कितनी बार सुनाई देते हैं। चाहे परिसर की चाय की दुकान कैंटीन हो, नुक्कड़ हो या घने पेड़ों के नीचे झुंड बनाकर गपियाते छात्र-छात्राएं हों, 'जे-टॉक' हर जगह सुनाई देती है। जो इस 'जे-टॉक' के विषय में नहीं जानते उनकी जानकारी के लिए बता दूं कि दिल्ली विश्वविद्यालय में 'जे' के मायने हैं तम्बाखू और हशीश को मिलाकर कागज़ में लपेट कर पी जाने वाली सिगरेट या ज्वाईंट। विश्वविद्यालय परिसर में इस मादक ज्वाईंट की मदद से सामाजिक रिश्ते आसानी से बनाए जा सकते हैं- किसी एक समूह में जगह पाने का यह एक रामबाण तरीका है। यह जे-ज्वाईंट अक्सर छः या सात सदस्यों के गुट में बांटकर फूंका जाता है।

क्या आप इस जानकारी से चिंतित हैं? विश्वविद्यालय के विशाल गेट से अंदर जाते समय मेरा भी यही हाल था। पर इस जगह छः महीने गुज़रने के बाद मैं इस सलीके और कैम्पस जीवन की इस सच्चाई की आदी हो चली हूं- ये अब मुझे न उकसाती है और न डराती है।

मैं उस दौर की युवा की हूं जहां नशा/ड्रग्स करना चिप्स या चाकलेट खाने जैसी आम बात हो गयी है। विश्व के हर शहर में ड्रग्स का सेवन बढ़ रहा है। इस समस्या का वर्ग नस्ल, जातीयता या लिंग से कोई लेना देना नहीं है। वर्ल्ड ड्रग्स रिपोर्ट 2006 के अनुसार दुनिया में दो सौ करोड़ लोग ड्रग्स का सेवन करते हैं। भारत के यूएनओडीसी तथा सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण मंत्रालय द्वारा किए अध्ययन से पता चला है कि देश में 73 करोड़ युवा नशीले पद्धार्थों का सेवन करते हैं। इनमें हशीश व भांग सबसे आसानी से मिलने वाली अवैध पदार्थ हैं जिसका उपयोग विश्व स्तर पर 141 करोड़ लोग करते हैं।

विश्वविद्यालय परिसर में 15-20 जमकर नशा करने वाले छात्र/छात्राएं होते हैं और हर साल इस समूह में पांच-दस नए सदस्य शामिल हो जाते हैं। हालांकि यह कहा जा सकता है कि ज़्यादातर युवक नशा करते हैं पर हर समूह में कुछ युवतियां भी होती हैं।

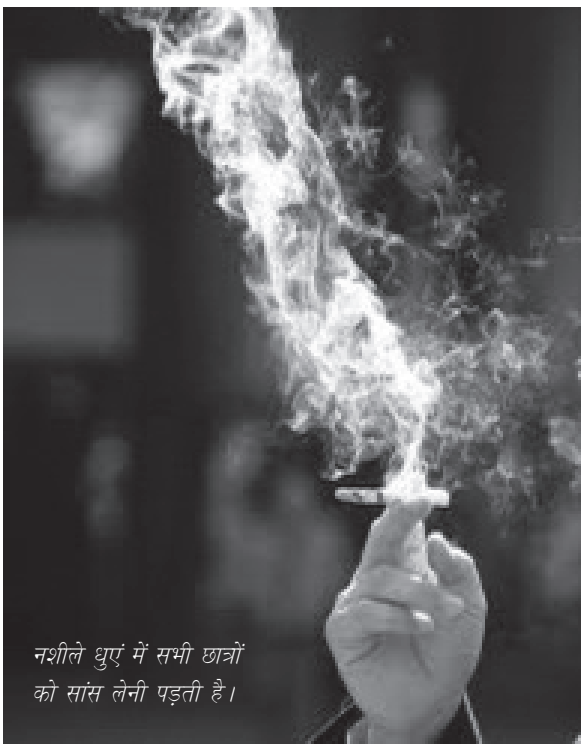

नशीले धुएं में सभी छात्रों को सांस लेनी पड़ती है।

इन गुटों के मिलने का कोई निश्चित समय नहीं होता। कुछ सुबह आठ बजे से ही चिलम फूंकना शुरू कर देते हैं तो कुछ कक्षाओं के बीच या दिन के किसी भी समय अथवा रात को होस्टल के कमरों या अड्डों पर नशा करते पाए जाते हैं। लड़कियों के होस्टल में अधिक कड़े नियमों के चलते ऐसा करना मुश्किल होता है। परन्तु लड़के किसी न किसी कोने का जुगाड़ कर ही लेते हैं।

विश्वविद्यालय परिसर में कुछ खास अड्डे हैं जहां 'जे समूह' पाये जाते हैं- कॉफी हाउस, कैंटीन, रिहाइशी होस्टल और डी-स्कूल जो विभिन्न कालेजों के युवाओं के मिलने का स्थान होने के कारण काफी भीड़ वाला इलाका होता है। इस नशे पर युवा बारह सौ से पंद्रह सौ रुपये माहवार खर्च करते हैं जो उनके जेबखर्च से निकलता है।

धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

दिलचस्प बात यह है कि लड़के जहां हशीश या भांग की सिगरेट बनाकर पीते हैं वही लड़कियां इसका सेवन केक व बिस्कुट बनाकर भी करती हैं।

ड्रग्स के इस खुलेआम और अत्याधिक सेवन के पीछे कई कारण हैं। आसानी से ड्रग्स का मिलना सबसे अहम वजह है। हालांकि विश्वविद्यालय परिसर में ये नहीं मिलते पर शहर में काफी ऐसी जगहें हैं जहां इन्हें खरीदा जा सकता है। दूसरा मुख्य कारण है युवाओं का उन गतिविधियों के प्रति रूझान जिनकी उन्हें मनाही हो या जो वर्जित हों। दिल्ली में सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान अपराध है पर युवा खुलेआम सिगरेट पीना शान की बात समझते हैं।

इस विषय पर विश्वविद्यालय के शिक्षकों और प्रोफ़ेसरों के नज़रिये को जानने के लिए मैंने उनसे बात की। एक प्रोफ़ेसर ने कहा, 'अगर आप जानते है कि आप क्या कर रहे हैं तो आपको अपनी इच्छानुसार जीने की आज़ादी है। पर मुझे इन युवाओं की दूसरों के प्रति बेरूखी से आपत्ति है। छात्र खुले आम सिगरेट पीते हैं और इस बात की कोई परवाह नहीं करते कि उनके अन्य साथियों को भी नशीले धुएं में सांस लेनी पड़ती है।'

एक अन्य छात्र जो सिगरेट नहीं पीता ने नाराज़गी जताई, 'कॉलेज में धूम्रपान बंद होना चाहिए। जिन्हें ज्वाईंट फूंकना है वे कहीं और जाकर ऐसा करें तो सही है। यहां सभी को ज़हरीली हवा में सांस लेने को मजबूर करना गलत है।'

तो फिर ऐसा क्या किया जाए कि धूम्रपान करने वाले दूसरों की परेशानी का कारण न बनें। एक उदारवादी प्रोफ़ेसर ने सलाह दी, 'कालेज में धूम्रपान कक्ष होना चाहिए। छात्रों पर कम से कम पाबंदी होनी चाहिए जिससे वे सही-गलत की पहचान कर सकें।'

पर अधिकांश शिक्षक वर्ग इसके विरुद्ध हैं- 'धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक है। यह गलत है और इसके नियम पुरुष व स्त्रियों के लिए समान हैं।'

हशीश, भांग व अन्य नशीली वस्तुओं के सेवन से याददाश्त कमज़ोर होना, सोचने-समझने की शक्ति में बिखराव, हृदय गति बढ़ना, घबराहट, सरदर्द, शारीरिक बल व तालमेल में कमी जैसे गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। युवतियों में इससे भावनात्मक कमज़ोरी, माहवारी समस्याएं, थकान और झुंझलाहट जैसी परेशानियां भी पैदा हो सकती हैं।

इस समस्या से युवाओं को बाहर निकालने का एकमात्र सामाजिक हल है नशाखोरी व धूम्रपान विरोधी जानकारी का प्रसारण, इसके दुष्प्रभाव पर जागरूकता फैलाना तथा जो इस लत को छोड़कर इससे बाहर निकलना चाहते है उनको सहयोग और प्रोत्साहन देना। विडम्बना लेकिन यह है कि विश्वविद्यालय में धुएं के छल्लों को तो बिखरते-फैलते देखा जा सकता है परन्तु परामर्श, सलाह, सहयोग समूह जैसे कोई प्रयास यहां नज़र नहीं आते। क्या इस चुनौती को कोई स्वीकार करने के लिए सामने आयेगा?

साभारः विमेंस फ़ीचर सर्विस

***ईता महरोत्रा** विमेंस फ़ीचर सर्विस के लिए लिखती हैं।*

पुस्तक परिचय

लेखक शारदा श्रीनिवासन
पृष्ठ 294 + परिचय
भाषा अंग्रेज़ी
प्रकाशक विमेन अनलिमिटेड, नई दिल्ली
मूल्य 595/-

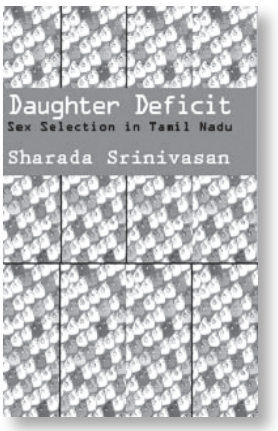

डेफ़िसिट डॉटर्स: सेक्स सलेक्शन इन तमिलनाडु

उत्तरी भारत के राज्यों- पंजाब, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, दिल्ली में लिंग परीक्षण की सच्चाई से हम सब वाकिफ़ है। परन्तु इस अकादमिक दस्तावेज़ के माध्यम से शारदा श्रीनिवासन ने दक्षिण के राज्य तमिलनाडु के दहलाने वाले तथ्य उजागर किए हैं।

शारदा श्रीनिवासन यॉर्क विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं। उनका मानना है कि बालिका शिशु के प्रति बेरूखी पूर भारत में विद्यमान है। तमिलनाडु में मदुरई ज़िले के उसीलमपट्टी क्षेत्र व सेलम में स्त्री भ्रूण हत्या के काफी मामले सामने आए हैं। राज्य में 0-6 वर्ष के वर्ग समूह में लड़कियों की संख्या निरन्तर गिरती जा रही है। हालांकि भारत के अन्य राज्यों की तुलना में तमिलनाडु में औरतों की स्थिति व दर्जा दोनों बेहतर पाये गये हैं फिर भी बालिका शिशु संख्या के आंकड़े 985 (सन् 1961) से गिरकर 942 (सन् 2001) पर पहुंच गये हैं।

इस राज्य में गिरते आंकड़ों वाले क्षेत्रों में अध्ययन व यात्राओं से यह सामने आया है कि स्त्री भ्रूण हत्या अनेक जाति, वर्गों व ज़िलों में प्रचलित है। यह प्रथा मुख्यतः सम्पन्न व ऊंची जाति के भूपति परिवारों में पाई गई है। मदुरई की कल्लर तथा सेलम व वेल्लोर की गूंदर जाति के साथ-साथ अन्य जाति के लोग भी स्त्री भ्रूण हत्या से जुड़े हैं।

लेखिका ने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि इस चलन का गरीबी और शिक्षा के अभाव से कोई लेना देना नहीं है। गर्भ में लिंग परीक्षण की चाह रखने वाले परिवार संभ्रांत और शिक्षित वर्ग से आते हैं। पंजाब जैसे राज्यों में सम्पत्ति के विभाजन को रोकने के लिए एक दम्पति एक बच्चा यानी बेटा पैदा कर रहे हैं। ठीक इसी तरह सेलम के परिवारों में अगर पहलोंठी का बच्चा बेटा हो जाए तो अन्य बच्चों पर रोक लगा दी जाती है। परन्तु अगर पहला बच्चा बेटी होने पर बेटा पैदा होने का इंतज़ार करना उचित समझा जाता है। इलाके में लड़कियों की घटती संख्या से वधुओं की कमी और अन्य जातियों के साथ विवाह संबंधों में भी वृद्धि देखी गई है।

अपनी पुस्तक में श्रीनिवासन बताती हैं कि स्त्री भ्रूण हत्या व लड़कियों की घटती चाह के पीछे मुख्य कारण है सम्पत्ति। बेटियों के उत्तराधिकार में ज़मीन-जायदाद नहीं मिलती, न ही बुढ़ापे में माता-पिता उनके साथ रहने की उम्मीद कर सकते हैं। दहेज, परिवार की इज़्ज़त का दायित्व जैसे अन्य कारण भी इस बेरुखी के लिए ज़िम्मेदार हैं।

लेखिका अपनी पुस्तक में इस बात की भी ज़ोर-शोर से वकालत करती है कि सरकारी हस्तक्षेप की मदद से इस समस्या को सम्बोधित किया जा सकता है। वे मानती हैं कि सामाजिक रवैयों में बदलाव तथा नैतिक मूल्यों के प्रति सकारात्मकता के साथ-साथ अल्पकालीन सरकारी प्रयासों की भूमिका भी अहम है।

पुस्तक में तमिलनाडु के कुछ चुनिंदा इलाकों धर्मपुरी, सेलम, थेनी, नामक्कल व मदुरई जहां पर लड़कियों की संख्या सर्वाधिक गिरी थी वहां सरकारी परियोजनाओं से हुए परिवर्तन का ब्योरा भी दिया गया है। सरकार ने यहां क्रेडल बेबी स्कीम, बालिका शिशु संरक्षण स्कीम व स्त्री शिशु भ्रूण हत्या के ख़िलाफ़ सघन कानूनी सक्रियता का कार्यान्वयन किया है। यहां पर गैर सरकारी संगठनों सरकार व नागरिक समाज समूहों के त्रिपक्षी प्रयासों के चलते 1960 के बाद पहली बार लड़कियों की तादाद में चार अंकों की बढ़त यानी 942 से 946 (सन् 2011) देखी गई है।

2011 की जनगणना के बाद लड़कियों की संख्या में गिरावट रोकने के प्रयासों को और अधिक तेज़ कर दिया गया है। उदाहरण के तौर पर ग्रामीण सेलम में स्त्री भ्रूण हत्या के आंकड़े 121 (सन् 1996-99) से घटकर 45 (सन् 2003) धर्मापुरी में 111 से 49 व थेनी में 82 से 42 रह गए हैं। स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों के कारण ग्रामीण इलाकों में अब अपंजीकृत परीक्षण केंद्र भी नहीं खोले जा सकते।

पुस्तक के अंत में शारदा श्रीनिवासन सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों की सराहना करते हुए पाठक के समक्ष एक शंका भी पेश करती हैं। क्या सरकार व स्वयंसेवी संगठनों के प्रयास और दिलचस्पी में कमी स्त्री संरक्षण के प्रयासों को बरकरार रख सकेगी? क्या बेटियों को दोबारा जीने के हक़ से वंचित होना पड़ेगा? लिहाज़ा सरकारी नीतियों के अलावा सामाजिक मूल्यों रवैयों और व्यवहारों में मूलभूत परिवर्तन ही आने वाले समय में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

–जुही जैन

अपनी बेटी के नाम

अतिया दाऊद

तुझे 'कारी' कहकर मार दें
मर जाना
पर प्यार ज़रूर करना...

शराफत के शोकेस में
नकाब डालकर मत बैठना,
ज़रूर प्यार करना...

ख़्वाहिशों के रेगिस्तान में
थूहर के जैसी मत रहना
ज़रूर प्यार करना...

गर किसी की याद तेरे दिल में
धीमे-धीमे दबे पांव चली आए,
मुस्कुरा देना
ज़रूर प्यार करना...

क्या करेंगे वे? बस तुझे संगसार करेंगे
जीवन पल तू जीना
ज़रूर प्यार करना...

तेरे प्यार को गुनाह भी कहा जाएगा
तो क्या हुआ? सह लेना...
प्यार ज़रूर करना...

अतिया दाऊद *पाकिस्तान की जानी-मानी नारीवादी कवयित्री हैं।*

फ़िल्म समीक्षा

फ़िल्म : अपराजिता

निर्देशक : रमन कुमार

भाषा : हिन्दी

अवधि : 60 मिनट

स्वैच्छिक स्वास्थ्य संगठन वीहाई (वालेंटरी हैल्थ असोसियेशन ऑफ़ इण्डिया) तथा स्मिता प्रोजेक्ट प्रस्तुतिकरण के सहयोग से निर्मित यह वृत्तचित्र एक युवा किशोरी अपराजिता के संघर्षों और प्रयासों का चित्रण है। इस फ़िल्म में उसकी कठिनाइयों, उससे बाहर निकलने की कोशिश तथा असल पहचान के लिए आगे बढ़ने के पहलुओं पर भी नज़र डाली गई है।

कहानी की शुरूआत एक किशोरी अपराजिता और उसकी मां के बीच बातचीत से होती है जिसमें किशोरी अपनी पसंद के कपड़े पहनने के लिए प्यार से गुज़ारिश कर रही है। परन्तु मां दादा व पिता की पसंद को आगे रखते हुए उसे ऐसा करने से मना करती है। अपने तर्क को आगे रखते हुए अपराजिता कहती है कि आज उसका सोलहवां जन्मदिन है व इस मौके पर उसका हक़ बनता है कि वह अपनी पसंद के कपड़े यानी पैंट पहन सके। बेटी की बात सुनकर मां उसे अपने मन की करने के लिए रज़ामंदी दे देती है।

अगले दृश्य में अपराजिता के घर उसके जन्मदिन की पार्टी हो रही है। अपराजिता दादाजी को केक खिलाने आती है परन्तु दादाजी नाखुश हैं। पार्टी का शोर-शराबा उन्हें पसंद नहीं है। वह अपने बेटे को बुलाकर डांट लगाते हैं जिसे सुनकर बेटा पार्टी खत्म होने का ऐलान कर देता है।

अगले दिन अपराजिता बास्केट बॉल की प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए घर में अभ्यास कर रही है ताकि वह स्कूल में होने वाले मैच में शामिल हो सके। परन्तु दादाजी गुस्सा होकर कहते हैं कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए और स्कूल के बाद सीधे घर आकर काम काज सीखना चाहिए। फ़िल्म के मध्यान्तर तक अपराजिता के लिए दादाजी की तरफ से हिदायतें ही होती हैं जिनमें ख़ासतौर पर लड़कियों को चूल्हा-चौका संभालने व घर के अन्य कार्यों में सहयोग देने के लिए तैयार होने के संदेश दिए जाते हैं।

फ़िल्म के अगले भाग में अपराजिता के पिता की नौकरी छूट जाती है। पर पिता चाहते हैं कि बच्चों की पढ़ाई-लिखाई जारी रहे। इसके लिए वे अपनी जमा-पूंजी इस्तेमाल करना चाहते हैं। पर दादाजी को

यह गवारा नहीं है। वे आदेश देते हैं कि लड़की की पढ़ाई बंद कर दी जाए और जमा की हुई रकम उसकी शादी के लिए सुरक्षित रखी जाए।

यह जानकर अपराजिता के सारे सपने टूटकर बिखर जाते हैं। उच्च शिक्षा और मौज-मस्ती की जगह रोक-टोक, पाबंदियां और मनाहियां ले लेती हैं। नाउम्मीदी और उदासी उसे घेर लेती है।

अपराजिता की बुआ महिला कॉलेज में कला शिक्षिका है। उनका आना अपराजिता में जीवन में एक बार फिर उम्मीद की किरण लेकर आता। वह अपनी भतीजी को समझाती है कि वह मायूस न हो। वह अपने हाथ में ब्रश थामकर अपने जीवन में रंग भर सकती है। चित्रकारी के शौक के ज़रिए वह एक आत्म-सम्मान से भरी खुशहाल ज़िंदगी बसर कर सकती है। बुआ के इन प्रगतिशील विचारों और खुली सोच से अपराजिता को हौसला और हिम्मत मिलती है। वह ठान लेती है कि वह ज़िंदगी में कुछ करके साबित कर देगी कि लड़कियां किसी से कम नहीं होतीं।

बुआ दादाजी से अपराजिता को अपने साथ ले जाने की अनुमति ले लेती है। बुआ के यहां अपराजिता की मुलाकात अन्य लोगों से होती है। छः महीने के उपरांत दादाजी अपराजिता को वापस बुलाने के लिए कहते हैं। माता-पिता उसे लेने के लिए बुआ के घर जाते हैं।

अपराजिता अपने माता-पिता के साथ वापस जाने से इंकार कर देती है। उसके साथी, सहयोगी शिक्षक और बुआ उसके मां-बाप को समझाते हैं कि अपराजिता पर कोई दबाव न डालें। अपराजिता अपना निर्णय अपनी मां को बताती है— वो घर वापस नहीं आना चाहती बल्कि यहां रहकर अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई करना चाहती है। मां मान जाती है और अपने पति को टाल मटोल करके घर वापस जाने को कहती है। इस बात को किशोरी के पिता भी समझ जाते हैं। अपनी पत्नी के निर्णय का साथ देते हुए वह घर वापस चले जाते हैं।

यह सब जानकर दादाजी बहुत दुःखी होते हैं। कुछ समय बाद दादाजी को दिल का दौरा पड़ जाता है। अब डॉक्टर बन चुकी अपराजिता दादाजी की खूब देखभाल करती है। होश आने पर जब दादाजी को यह पता चलता है कि आज वे अपराजिता के कारण ही ज़िंदा है तो वह अपने किए पर बेहद शर्मिंदा होते हैं और पोती से माफ़ी मांगते हैं। उसे आगे बढ़ने का आशीर्वाद देते हुए दादाजी अपनी गलती मान लेते हैं।

अपराजिता एक ऐसी युवा लड़की के संघर्ष की कहानी है जिसका दृढ़ संकल्प, लगन और साहस उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इस वृत्तचित्र में निर्देशक ने समाज में व्याप्त गैर बराबरी, भेदभाव और पितृसत्तात्मक मानदण्डों का बखूबी चित्रण किया है। समाज में लड़कियों के साथ होने वाली नाइंसाफ़ी, परिवार में उनका दोयम दर्जा तथा कदम-कदम पर उनके साथ होने वाले अन्याय को फ़िल्म में बड़े ही सहज तरीके से दर्शाया गया है।

फिल्म में यह भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है कि अगर मन में कुछ कर गुज़रने और आगे बढ़ने की चाह हो, परिवार व समाज के कुछ लोगों का सहयोग मिल जाए तो मंज़िल दूर नहीं। अगर लड़कियों को लड़कों की तरह मौके, हौसला और सहयोग मिले तो वे भी बेटों की तरह अपना नाम रोशन कर सकती हैं।

यह फ़िल्म युवाओं के साथ कार्यशालाओं में उपयोगी प्रशिक्षण सामग्री हो सकती है। आम जीवन की हक़ीक़तों से बुनी यह कहानी आत्म-मंथन और चर्चाओं को सघन बनाने में भी मददगार रहेगी।

सरिता बलोनी *जागोरी में कार्यरत हैं।*

मेरे घर के पास के
पार्क में लाइट है नहीं
बस्ती के दारू और जुए वाले अंकल,
सब खेलते हैं वहीं।
जिस दिन पार्क में ट्यूबलाईट लगेगा,
अंधेरा फिर उन्हें आसरा न देगा।
पार्क फिर डरावना ना होगा कभी,
तब जाएंगे खेलने हम सभी।

एक दिन चंचल
झट उठकर बोली
पार्क में क्यों खेलती है
सिर्फ लड़कों की टोली?
हम लड़कियां वहां खेलने हर रोज़ जाती ही नहीं।
शायद इसलिए, खेलने की जगह वहां पाती ही नहीं।
कल लड़कियों की टीम बनाकर जाऊंगी दिन में वहीं।
क्रिकेट खेलना नहीं आता
तो गुल्ली-डण्डा ही सही।

फुटबॉल और क्रिकेट
लड़कियों के लिए नहीं।
मां कहती है मेरे लिए
घर ही है सही
वो क्या जाने की जब मैं स्कूल जाती हूं,
लड़कों को सभी खेलों में हराती हूं।

स्कूल हो आई
टैन्कर से पानी भर लाई
बना ली दोपहर की रोटी
सजा दी छुटकी की चोटी
कर दी घर की सफ़ाई, साथ चूल्हे की लिपाई
मुन्नो को खाना खिलाया,
फिर अम्मा का सिर दबाया,
अब घर में किसी को कुछ चाहिए नहीं
अब मिला है मौका सही...
अब मेरा खेलने का टाईम है!

हर दिन मम्मी मुझे,
पार्क में खेलने से रोके।
उठाकर कोई ले जाएगा, कहकर वो टोके।
चुपचाप मैं सब कुछ सहती,
वो ऐसा कभी भाई को नहीं कहती।
लड़कों को कोई नहीं उठाता है क्या?
ऐसा सवाल जब मेरे जुबान पर जगे।
तब थप्पड़ मुझे मार कर वो बोली,
तेरे मुंह में कीड़े पड़ें।

अभी तू छोटी है **बाहर मत जा**
अभी तू बड़ी हो गई है
बाहर मत जा
किसी की नज़र लग जाएगी
बाहर मत जा
अरी अम्मा, लड़ाऊंगी नज़र, तभी तो उतरेगी नज़र।
कोई ज़न्नत नहीं यहां अन्दर। क्या रद्द होगा अगर
जाऊंगी बाहर? बाहर आसमान से मेल करूंगी,
संसार के संग खेल करूंगी,
बाहर तो मैं अब जाकर रहूंगी

मां, जब भी बाज़ार जाती हूं,
चुपचाप होती हूं परेशान।
चलती है मर्दों की अज़ीब हरकत,
चलती है गंदी ज़ुबान।
मां बोली, जब तू बाज़ार जाएगी
तेरा भाई तेरे साथ जाएगा।
अरे मां, मैं 17 की, वो 8 साल का,
वो मुझे इन सबसे क्या बचाएगा?
खुद इन हरकतों का सामना
करने की आ गई है बारी।
कुछ कदम भर सामना मैं करूंगी
तो संग जुड़ेगी दुनिया सारी।

बिटिया ले, तेरे लिए खिलौने,
छोटे-छोटे बर्तन और नन्हें भगौने।
बिटिया ले, ये गुड़िया तेरे लिए,
इसके बाल सजा और पहना कपड़े इसे।
अम्मा, रखो अपनी सुन्दर सी गुड़िया,
मुझे लगता है बाहर, खेलना-कूदना बढ़िया।
रखिए, अपने ये खिलौने सारे,
मुझे दो बैट-बॉल,
और भैया की छोटी कारें।

सारे दिन मां जाती है,
मज़दूरी या काम पर।
बंद कर जाती है मुझे,
हमारे घर के भीतर।
एक दिन ऐसा आएगा,
मां का बटुआ पैसों से भर जाएगा।
फिर किसी भी झिझक के बिन,
धूप में खेलूंगी सारे दिन!

अम्मा के ज़माने में कहते थे,
लड़की करेगी शादी, बनाएगी घर पर रोटी।
लड़का खोजेगा मज़दूरी-चाकरी,
और लाएगा घर पर रकम मोटी।
पर हम सबके पापा-लोग,
ऐसी कोई रकम तो ना लाए।
अम्माओं ने घरों के बर्तन धोकर, हमारे खर्चे चलाए।
अब टाईम आ गया है, हम लड़कियों को
पढ़कर कमाने का, और टाइम आ गया है,
भैया को रोटी बनाना सिखाने का।

यह जानकारी जागोरी की यूथ बुकलेट 'मैं भी खेलूंगी' से ली गई है।

cfV;k mBh ugh rk

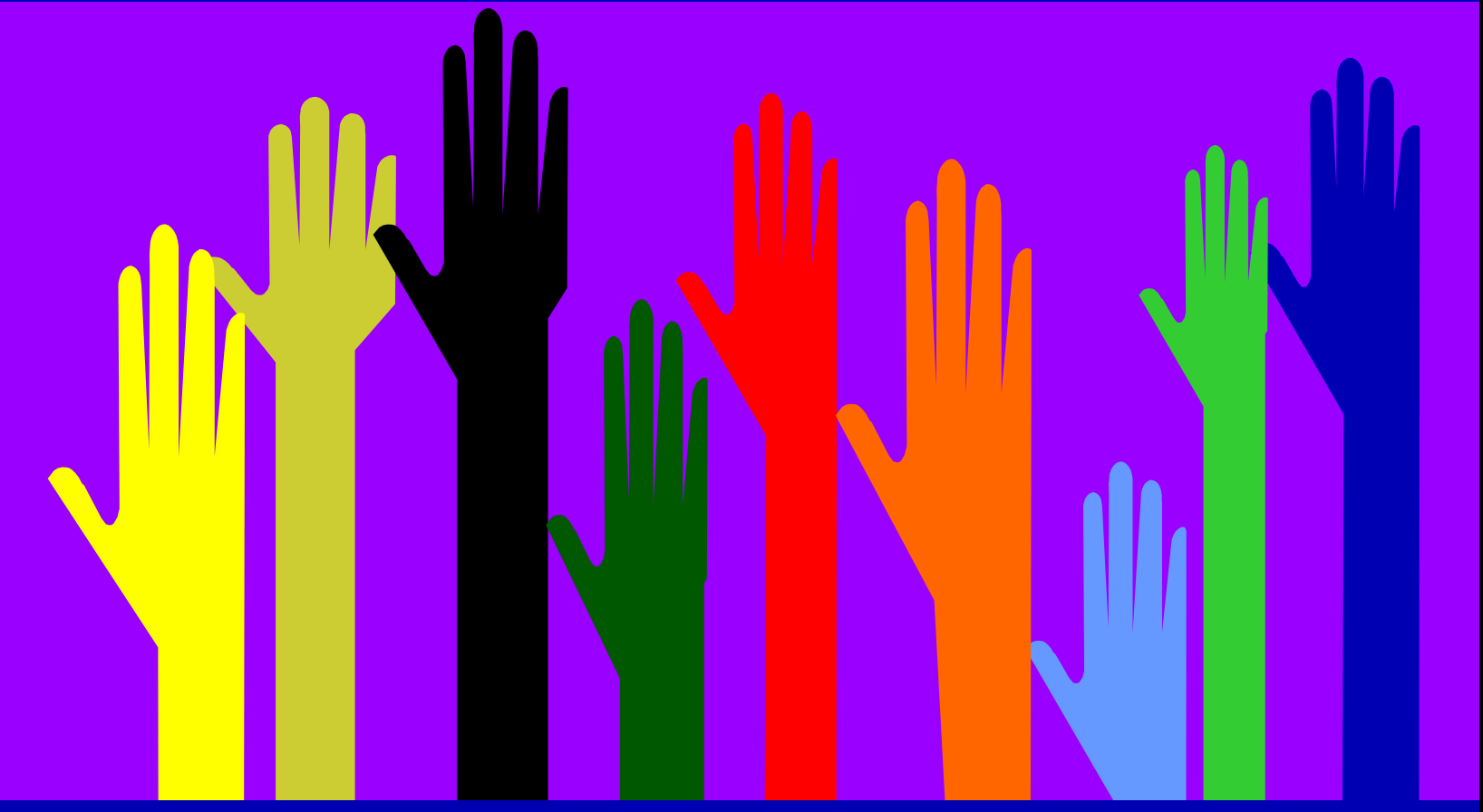

Jagori Rural

tYe c<rk tk;x

fMtkbu% lkHkkj vugn • lxr] tkxkjh] tkxkjh xkeh.k] jDdj fl/kckMh] dkxMk ftyk] fgekpy in'k&176057

Sangat

A South Asian Feminist Network